ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का साहित्यिक मासिक

शांतिधर्मी

मई–2020

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्यन्ताम्।। (यजुर्वेद ३६/१८)

प्रकाशन का 22वां वर्ष

₹20

हितकारी प्रकाशन समिति हिण्डौन सिटी द्वारा पुन: प्रकाशित

डॉ० विवेक आर्य द्वारा सम्पादित दुर्लभ साहित्य अब जींद में उपलब्ध

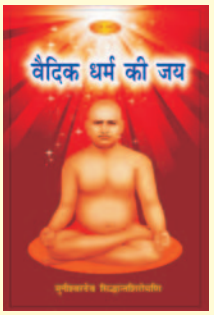

वैदिक धर्म की जय

(विविध आर्य सिद्धान्तों का संवाद रूप में प्रतिपादन
मूल लेखक :
पं० मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि
इस संस्करण के सम्पादक :
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ संख्या : १२०, मूल्य ८० रुपये

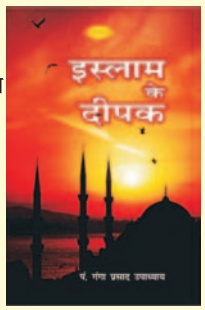

इस्लाम के दीपक

(मसाबीहुल इस्लाम का हिन्दी अनुवाद)
मूल लेखक :
स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
वर्तमान संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ २६८, मूल्य : २०० रुपये

ऋषि बोध कथा

(ऋषि जीवन की गृहत्याग तक की प्रेरणायें)
मूल लेखक
स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ
इस संस्करण के संपादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ ९८ मूल्य ८० रुपये

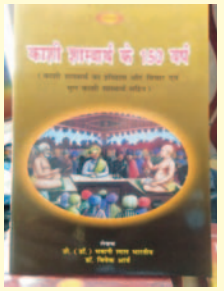

काशी शास्त्रार्थ के 150 वर्ष

(काशी शास्त्रार्थ का इतिहास और विचार एवं मूल काशी शास्त्रार्थ सहित)
लेखकद्वय :
प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ ७०, मूल्य ४० रुपये

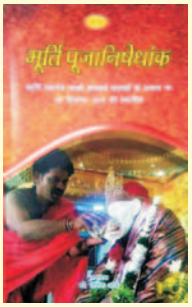

मूर्ति पूजा निषेधांक

(१९६९ में प्रकाशित आर्यमित्र साप्ताहिक का अंक, जिसमें मूर्ति पूजा के संबंध में अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के लेखों का संकलन है)
तत्कालीन सम्पादक : उमेशचन्द्र स्नातक
इस संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ : ११०, मूल्य : ६० रुपये

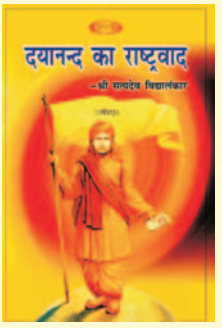

दयानन्द का राष्ट्रवाद

(मूल पुस्तक : राष्ट्रवादी दयानन्द)
मूल लेखक :
स्व० पं० सत्यदेव विद्यालंकार
वर्तमान संस्करण के सम्पादक :
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ : ९४, मूल्य : ७० रुपये

मूर्तिपूजा शंका समीक्षा

मूल लेखक : स्व० पं० राजेन्द्र जी अतरौली
वर्तमान संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ २८, मूल्य : २० रुपये

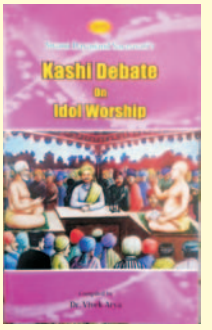

Kashi Debate On Idol Worship

Compiled By
Dr. Vivek Arya

Pages : 50, Price : Rs. 25

□ **जींद में प्राप्ति स्थान** : शांतिधर्मी कार्यालय, पो बा० नं० 19, मुख्य डाकघर जींद (हरि०) व्हाट्स केवल 9996338552। □ ये पुस्तकें सीधे **हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डौन सिटी,** राजस्थान (दूरभाष 70142 48036) से भी मंगाई जा सकती हैं। □ ये पुस्तकें buyvadicsahitya@gmail.com से **आनलाईन** भी मंगाई जा सकती हैं। **नोट :** पुस्तकों का प्रेषण लॉकडाऊन खुलने के बाद ही संभव होगा।

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक

पं० चन्द्रभानु आर्य

सम्पादक : **सहदेव समर्पित**
(चलभाष **09416253826**)
उपसम्पादक : **सत्यसुधा शास्त्री**
प्रबंध संपादक : **सुभाष श्योराण**
आदरी सम्पादक : **यज्ञदत्त आर्य**
सह-सम्पादक : **राजेशार्य आट्टा**
डॉ० विवेक आर्य
विधि परामर्शक : **डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट**
सहयोग : **आचार्य आनन्द पुरुषार्थी**
श्रीपाल आर्य, बागपत
महेश सोनी, बीकानेर
भलेराम आर्य, सांधी
कर्मवीर आर्य, रेवाड़ी
कार्यालय व्यवस्थापक: **रविन्द्रकुमार आर्य**
कम्प्यूटर सज्जा : **बिशम्बर तिवारी**

सहयोग राशि

एक प्रति	:	२०.०० रु.
वार्षिक	:	२००.०० रु.
दस वर्ष	:	१५००.०० रु.

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शांतिधर्मी

प्रकाशन का बाईसवां वर्ष
मई, २०२० ई०

वर्ष : २२ अंक : ४ ज्येष्ठ २०७७ विक्रमी
स ष्टि संवत्-१९६०८५३१२१, दयानन्दाब्द : १९७

विषयानुक्रम

वेद अनुशीलन (चलता फिरता अपाहज) ७
यज्ञ का रहस्य (पुनर्प्रकाशन शांतिप्रवाह) ८
आर्यसमाज के करुणा वारियर्स १०
आर्यसमाजी प्रचार और जाट बिरादरी (भ्रमोच्छेदन) ११
वैदिक आर्य संस्कृति का मूल (राष्ट्र-चिन्तन) १२
फील्ड मार्शल का निराला सैनिक पं० रुचिराम (प्रेरणा) १५
भारत की बहादुर बेटी की सूझ-बूझ की कहानी (वीर-गाथा) १६
नौ घंटे तक महान् शास्त्रार्थ (स्वर्णिम पृष्ठ) २०
विद्या-अविद्या (आत्मिक उन्नति) २५
मौसम के अनुसार भोजन (स्वास्थ्य चर्चा) २८
कविता : ६ श्रीमती अनीता ढांडा, १६-दयाशंकर गोयल,
कथा : देश की खुशहाली का रहस्य, मनुष्य की कीमत-३०
स्तम्भ : बालवाटिका-२६, भजनावली-३१, माँ का महत्त्व-३४

ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

कार्यालय :
सम्पादक शांतिधर्मी, **पो बाक्स नं० 19**
मुख्य डाकघर जींद 126102
७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक, जीन्द-१२६१०२ (हरि०)
दूरभाष : 9996338552
ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

❒सहदेव समर्पित

भागम-भाग

❍❍विदेशी के व्यामोह में हमारी जीवन शैली बदल गयी है। प्रगति की चकाचौंध में हम यह भूल गये हैं कि यह प्रगति आखिर किसके लिये है। खैर यह तो बहुत बड़ी बात हो गयी। आम बात यह है कि स्वदेशी उद्योग नष्ट हो गये हैं। आदमी काल्पनिक निर्धनता का शिकार हो रहा है। उत्पादक ठगा जा रहा है। स्वदेशी शिल्प नष्ट हो गया है। तभी बेरोजगारों की फौज बढ़ी है। केवल नौकरी को ही रोजगार माना जाने लगा है। आप को पता है दो या तीन पीढ़ी पहले लोग नौकरी पसन्द ही नहीं करते थे।

❍❍दर असल विदेशी नकल ने इकोनोमी की परिभाषा ही बदल दी। यह इकोनोमी तभी बढ़ेगी जब लोग ज्यादा खर्च करेंगे। जबकि जीवन में आर्थिक शांति तभी होगी जब हम अपनी आवश्यकताएँ सीमित करेंगे।

❍❍एक खरगोश जंगल में सो रहा था एक आम के पेड़ के नीचे। अर्ध निद्रा में सपने ले रहा था- यदि आसमान गिर पड़े तो! सोचते सोचते डर गया। हवा के झोंके से एक आम का फल गिर गया पास में। कुछ जोर की आवाज हुई। उसका सपना पूरा हो गया। उसने सोचा गिर ही गया आसमान तो! भाग लिया। भागते भागते दूसरों ने पूछा- क्या हुआ? भागते भागते उत्तर दिया- आसमान गिर गया, भागो। गीदड़, लोमड़ी, हिरण, भालू सब भाग पड़े। जंगल के राजा ने देखा। दहाड़ कर पूछा क्या हुआ? आसमान गिर पड़ा। सोचा पागल हो गये हैं। गुर्राया--! दिखाओ, कहाँ गिरा! डरते डरते खरगोश ने घटनास्थल दिखाया। शेर ने सूक्ष्म निरीक्षण किया। आम देखकर सारी बात समझ गया। उसे आम दिखाकर पूछा- यही था क्या? खरगोश भी सारी बात समझ गया। अकारण डर गया, अकारण भाग लिया। सभी भाग रहे हैं। भागना सबकी विवशता भी बन गया है। न भागे तो दब जायेंगे। पर सच में कारण किसी को नहीं पता।

❍❍इस भागा दौड़ी ने बचपन लील लिया। किशोरों को किताबों के बोझ ने पीस दिया। गृहस्थ की बड़ी कमाई लगती है पढ़ाई पर। अपनों को अपनों से दूर कर दिया। परिवार के शिक्षणालय से वंचित कर दिया। घर में रहकर भी एक दूसरे से बहुत दूर। न कोई संवाद न कोई हंसी ठट्ठा। जीवन में न ईश्वर न शांति। भागम-भाग। आवश्यकताएँ इतनी बढ़ा लीं, नहीं नहीं, स्वयं नहीं इकोनोमी ने। खर्च करने की प्रेरणा ने। खर्च करना ही देशभक्ति है! पाप की कमाई पतन का कारण बनती है। कैसे? आवश्यकताएँ बढ़ीं तो कमाई चाहिए। ठीक या गलत! दीपक लगाकर देखिये शुद्ध कमाई। एक नौकरी से कैसे काम चलेगा? ऊपर की कमाई! शांतिधर्मी के संस्थापक एक उदाहरण दिया करते थे। पहले किसी व्यापारी से पूछते थे- कम तो नहीं तोलते? धोखा तो नहीं करते? वह उत्तर देता था- जी बाल बच्चेदार हूँ। (गलत कमाई करूँगा तो पाप लगेगा) आज वही प्रश्न पूछते हैं तो भी वही उत्तर देता है- जी बाल बच्चेदार हूँ। (ऊपर की कमाई नहीं करूँगा तो काम कैसे चलेगा!) संस्कृति की बात करते हैं तो कुछ लोगों को बुरा लगता है। अरे संस्कृति का अर्थ बेहूदे नाच गाने नहीं, संस्कृति का अर्थ त्यागभाव, संस्कृति का अर्थ परोपकार! संस्कृति का अर्थ प्राणी मात्र से प्रेम!

❍❍इस भागा-दौड़ी ने एक चीज और दी है- हीन भावना! अपने के प्रति, अपनों के प्रति। अपनी कैजुवल ड्रैस वाले को बूढ़ा कहकर बोलेंगे। विदेशी कैजुवल ड्रैस वाले को अंकल जी। अपनी हर वस्तु हीन लगती है। विचार भी संस्कार भी। वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ घर को उजाड़ना नहीं। अब तो हमारे कथावाचकों को भी अपने ३३ करोड़ नाम कम लगने लगे। नाम ही अलग नहीं है। केवल भाषा का सवाल नहीं है, परिभाषा का सवाल है। शब्द पारिभाषिक होते हैं। शब्द के पीछे एक संस्कृति होती है। आपके पास संस्कृत है, हिन्दी है तो क्यों एक अनजान भाषा के वकील बनते हैं, आपको जिसकी न प्रकृति पता है न व्याकरण। जो खुद भी एक नहीं है और १०-१२ कोस की दूरी पर बदल जाती है। (इसी अंक में श्री रामफल सिंह आर्य जी के लेख में पढ़िये।) परमेश्वर का मुख्य निज नाम ओ३म् है। इसमें जितना अर्थ गाम्भीर्य है उतना और किसी में नहीं है। पर यह होड़ है ना! भला दिखने की, अच्छा दिखने की। अपने अच्छा समझते हैं उससे क्या होता है, जब दूसरे अच्छा समझेंगे तभी तो हम अच्छे बनेंगे ना!

❍❍कोरोना ने थोड़ा ठहरकर सोचने का अवसर दिया है। जिन चीजों के लिए हम भाग रहे हैं, उनके बिना भी हमारा काम ठीक से चल सकता है। जो चीजें हमारे आनन्दपूर्ण जीवन के लिये आवश्यक हैं, उनमें कुछ मोल भी नहीं लगता। उन्हीं चार रोटियों में अम्बानी का पेट भरता है उन्हीं में खजानी का। मानव जीवन क्या है एक बुलबुला है पानी का। सारी फेक हेकड़ी निकालकर रख दी कोरोना ने। अवसर है सोचने का! कहाँ जाना था? कहाँ आ गए? आत्मनिरीक्षण जीवन को नये अर्थ देगा। जीवन में प्रगति होनी चाहिए, पर अपने आप को खोकर नहीं, पाकर!

आपकी सम्मतियाँ

मुझे मार्च २०२० का अंक शांतिधर्मी ई-पत्रिका पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस अंक का धर्म चिन्तन, पर्यावरण, बाल वाटिका में बहुत ही सुन्दर रचना देखने को मिली हैं। शांतिधर्मी पत्रिका में मुझे भारतीय संस्कृति की एक झलक देखने को मिली है जो मेरे लिए बहुत ही प्रेरणादायक है। आप सभी महानुभावों से आशा है कि शांतिधर्मी पत्रिका का यह पावन कर्म सदा ही चलता रहे। आप सभी संपादक मंडल को हार्दिक बधाई एवं भविष्य के लिए शुभकामनाएँ।

देवेश कुमार भारती (शिक्षक) प्रदेश संयुक्त सचिव,
छत्तीसगढ़ सर्व शिक्षक कल्याण संघ
भिलाई, छत्तीसगढ़

✉

अप्रैल, २०२० के आत्म निवेदन में संपादकीय 'वेद का विज्ञान' ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी रहा! संपादकीय में वेद के मुख्य चार विषयों- विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान का वर्णन किया गया है! और इसी के द्वारा लोक और परलोक सुधारने का सुझाव दिया गया है! स्वामी दयानंद के अनुसार विज्ञान उसको कहते हैं कर्म, उपासना और ज्ञान का यथावत् उपयोग करना, लेकिन आज के मनुष्य की व्यथा यह है कि वह विज्ञान का प्रयोग केवल भौतिक पदार्थों के अधिक से अधिक संग्रह तथा स्वार्थसिद्धि के लिए करता है। वेद के अनुसार धर्म मनुष्य को आपस में प्रेम प्यार, सद्भावना, त्याग, समर्पण भावना के साथ एक दूसरे का भला सोचते हुए इकट्ठे रहने के लिए समझाता है! मनुष्य को सदाचरण करना चाहिए, पक्षपात तथा ईर्ष्या को त्यागकर सत्य, असत्य में भेद को समझकर सत्य का ही अनुगमन करना चाहिए। इस बेहतरीन सम्पादकीय के लिए हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं। डॉ० नरेश सिहाग की कविता 'कोई तो चिराग जलाईये' प्रशस्य है। डॉ० विजय कुमार सिंघल का लेख भारतीय संस्कृति तथा परंपरा की प्रासंगिकता व महत्त्व को बताता है। कार्तिक अय्यर एवं अभिलाष आनंद का लेख जानकारी बढ़ाने वाला है। लेख 'जवानो! जवानी यूं ही ना गंवाना' युवकों के लिए मार्गदर्शक है। राजेशार्य आट्टा का लेख देशभक्त बलिदानियों की उपेक्षा की दर्दनाक गाथा व्यक्त करता है। आचार्य ज्ञानप्रकाश का लेख ज्ञानवर्धक व उपयोगी भी है। बाल वाटिका ज्ञानवर्धक, दिलचस्प, दिमाग की कसरत करने वाली तथा मनोरंजक है! अन्य रचनाएं भी चार चांद लगाने वाली हैं।

प्रोफेसर शामलाल कौशल (9416359045)
मकान नंबर 975 बी
ग्रीन रोड, रोहतक 124 001 हरियाणा

प्रोफेसर शामलाल कौशल के आशीर्वचन

अभी तक तो मैं आपको एक बेहतरीन संपादक, लाजवाब साहित्यकार और एक अनुकरणीय संस्कारी व्यक्ति के तौर पर जानता था लेकिन आपके द्वारा गाए हुए कुछ आध्यात्मिक तथा देशभक्ति के भजन सुनकर मेरी आत्मा को तृप्त करने का पुण्य कमा लिया है। मेरा मानना है कि आप सही मायनों में स्वर्गीय पंडित चंद्रभानु जी आर्य के सही उत्तराधिकारी हैं बहुत-बहुत बधाई और शुभकामनाएं।

✉ शान्तिधर्मी की पीडीएफ मिली। मास्टर देवराज जी आर्य के स्वर्गवास का समाचार मिला, बहुत दुःख हुआ। जब भी मैं जींद में आर्यसमाज के उत्सवों में आया, लगभग प्रत्येक उत्सव पर उनसे भेंट हुई। वे एक स्वाध्यायशील और सिद्धांतनिष्ठ सज्जन पुरुष थे। कई बार उनसे सैद्धांतिक चर्चा भी होती थी और उसमें उनके विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता था। ऐसे सत्पुरुषों का अभाव अब खटकने लगा है, परन्तु ईश्वर की इच्छा के आगे सभी विवश हैं, नतमस्तक हैं। हम उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इस अंक में आर्यसमाज के उद्भट विद्वान् पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज के गुरु स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज का ब्रह्मचर्य के ऊपर लेख बहुत ही मार्मिक है। जब मैं स्वामी दीक्षानन्द जी के पास पढ़ता था तो वे कई बार इस व्याख्या का वर्णन किया करते थे। वैदिक मन्त्रों के रहस्यों को खोलने में श्रद्धेय स्वामी जी महाराज की योग्यता अद्वितीय थी। उनका चिंतन बहुत ही उच्च कोटि का और मौलिक होता था। मंचों पर जब हमारे ऐसे संन्यासी विराजमान होते थे तो सचमुच में वेद कथायें हुआ करती थी। ऐसा लगता था कि कोई वैदिक काल के ऋषि उपदेश कर रहे हैं। क्रान्तिकारी बटुकेश्वर दत्त जी पर दी गई जानकारी भी पठनीय है। हमारे क्रान्तिकारियों ने जो कष्ट सहन किये हैं, उनकी क्या गणना की जाये? विदेशियों ने जो कुछ किया सो तो समझ में आता है, परंतु जो कुछ अपनों ने किया उसे हम क्या कहें? श्री पंडित चमूपति जी एम ए की वे पंक्तियां सजीव हो उठती हैं-

खंजर भी चलाये अपनों ने, जहरें भी पिलाई अपनों ने।
अपनों के ही अहसां क्या कम थे, गैरों से शिकायत क्या होगी।

रामफलसिंह आर्य (9418277714)
उत्तम नगर, नई दिल्ली-५९

शांतिधर्मी-- प्रकाशन के बाईस वर्ष ---

शान्तिधर्मी एक अभियान---

शान्तिधर्मी पत्रिका का अप्रैल २०२० का अंक पढ़ने को मिला। मैं २२ वर्षों से शान्तिधर्मी परिवार का सदस्य हूँ। पहले साधारण सदस्य बना। फिर आजीवन सदस्य बना। मैंने अपने जीवन में कई सौ लेख लिखे हैं। शान्तिधर्मी पत्रिका ने मुझे लेख लिखने के लिए सर्वप्रथम मंच दिया। मेरे लेखकीय जीवन के आरम्भिक कई दर्जन लेख प्रकाशित करने और उनका कुशल सम्पादन करने का श्रेय शान्तिधर्मी के वर्तमान सम्पादक सहदेव शास्त्री जी को जाता है। यह कहना कि मेरा लेखक के रूप में जन्म शान्तिधर्मी के गर्भ से हुआ, कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

मैं शान्तिधर्मी के कड़वे और मीठे दोनों अनुभवों का भी दो दशकों से साक्षी रहा हूँ। मैंने अपनी आँखों से देखा कि सहदेव जी कैसे पत्रिका को तैयार करके रोहतक लेकर जाते। छपने पर पत्रिका का भार अपने कन्धों पर उठाकर ट्रेन से जींद लेकर आते। रात को बैठकर पते चिपकाते। बण्डल तैयार करते। अगले दिन डाकखाने जाकर उन्हें ग्राहकों के पास भेजते। प्रतिमाह करीब १० से १५ दिन सहदेव जी पिछले २२ वर्षों से इस तप को करते आ रहे हैं। एक गृहस्थ व्यक्ति के पास अपनी आजीविका से कितना समय बचता है। जो अल्प समय बचता है वह परिवार और समाज के लिए होता है। सहदेव जी ने अपने परिवार के कोटे का समय भी धर्म के कार्य को समर्पित कर दिया। इसका मैं साक्षी हूँ। चाहे आज हम इस त्याग का मूल्याङ्कन न कर पायें पर इसकी महत्ता कितनी है, एक उदाहरण से ठीक से समझा जा सकता है।

शांतिधर्मी के संस्थापक व आद्य सम्पादक स्वर्गीय चन्द्रभानु जी ने अपने जीवन में छह दशक से अधिक भजनोपदेशक के रूप में प्रचार किया। इतिहास साक्षी है कि हरियाणा को आर्य प्रदेश बनाने में आर्य भजनोपदेशकों का योगदान अप्रतिम है। भूखे पेट, चने चबाकर पैदल मीलों कंधे पर हारमोनियम उठाये आर्य भजनोपदेशक एक ग्राम से दूसरे ग्राम प्रचार करते घूमते थे। चन्द्रभानु जी बताते थे कि एक समय ऐसा भी था कि जब हम किसी ग्राम में जाते तो लोग हमारे स्वागत के लिए एकत्र हो जाते थे। वे कहते कि आर्य आये हैं और बड़ी अच्छी बात बताएँगे। अनेक लोग भोजन के लिए अपने घर आने का आग्रह करते। उन स्वच्छ हृदय ग्रामीणों को वेद, दयानन्द, यज्ञ, सन्ध्या और नशे से दूर रहने का उपदेश देकर, बसने बसाने की प्रेरणा देकर हम आगे प्रस्थान कर जाते थे।

यह सिलसिला वर्षों चलता रहा। इतिहास ने करवट ली। प्रारम्भिक लोग गुजर गए। उनकी सन्तान ने उनका स्थान ले लिया। उनकी सन्तानों में उतना उत्साह और जिज्ञासा नहीं थी, जितनी उनके पूर्वजों में थी। कभी कभी अलग दृश्य भी देखने को मिला। किसी-किसी घर में जाने पर उस घर की बहुएँ भजनोपदेशक का आना पसंद नहीं करती। उनकी प्रतिक्रिया हमें दोबारा न आने का इशारा करती थी। फिर हम उन घरों में नहीं गए। समय का फेर देखिये, वर्षों बाद उन ग्रामों में दोबारा जाना हुआ तो स्थानीय व्यक्तियों से पता चला कि उपदेशकों को नापसंद करने वाली बहुओं की संतान आज संस्कारविहीन होने से शराबी, नशेड़ी, चरित्रहीन, माँसाहारी बन गई हैं। जब खेत को खाली छोड़ दिया जाता है, तो वहां खरपतवार उग जाती हैं। यही संस्कारविहीन घरों में हुआ। रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। मारा गया धर्म मार देता है। अपने चारों ओर देखिये। आपको यह उदाहरण सरलता से देखने को मिलेगा। पं० चन्द्रभानु जी के जीवन का यह अनुभव सम्पूर्ण समाज को धर्ममार्ग का पथिक बनने की शिक्षा दे रहा है।

यह कहने में मुझे गर्व हो रहा है कि शान्तिधर्मी पत्रिका धर्म मार्ग का पथिक बनने में अत्यंत सहायक है। आज के आधुनिक और भौतिकवादी समाज में सम्पूर्ण परिवार को संस्कारित करने के लिए शान्तिधर्मी एक सशक्त माध्यम है। वैदिक विचारों का घरों में आगमन, उसका स्वाध्याय, संस्कारों का जन्म, विचारों में शुद्धता, आचरण में पवित्रता लाने का एक सार्थक विकल्प है। स्व० चन्द्रभानु जी के तप और सहदेव जी के अप्रतिम पुरुषार्थ से एक पत्रिका के रूप में दो दशक से शान्तिधर्मी समाज में सम्मान से स्थापित हो चुकी है। सहदेव जी जो तप कर रहे हैं, उसमें उनका कोई राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक स्वार्थ नहीं है। सार्थक, जीवन को उन्नत करने वाले वैदिक विचारों का प्रचार करने वाली इस प्यारी सी पत्रिका को अनेक प्रकार से सहयोग देकर आज आप स्वयं का, अपने परिवार का, अपने कुटुम्ब का, अपने समाज का कितना हित कर सकते हैं, यह चिन्तन आपको स्वयं करना है।

डॉ० विवेक आर्य, सहसम्पादक, शान्तिधर्मी

अनुशीलन सामवेद : आग्नेय पर्व

चलता फिरता अपाहज

-लेखक: पं० चमूपति

तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमूहिषे ।।३।। १०९

ऋषि :- सोभरि : उत्तम पालक।

हे मेरे मन! तू (तम्) उस (स्वर्णरम्) स्वर्ग के नेता की (गूर्द्धय) स्तुति कर जिसे (देवासः) देवताओं ने (अरतिं) उसकी स्तुति यह है- देवाधिदेव! तुम (हव्यम्) हवि को (देवत्रा) देवताओं में (ऊहिषे) पहुँचाते हो।

मेरे मन! तू चाहता है कि स्वर्ग में पहुँचे? तो वह स्वर्ग तेरे पास ही है। तेरा अपना 'स्व' स्वः है-स्वर्ग है। तू अपने आपको पहचानता ही नहीं। वह सुख कौन सा है जो तेरे अधीन नहीं? अन्य इन्द्रियों को तो अपने विषयों तक पहुँचने में कुछ कठिनाई भी है, उनके विषय उनसे दूर हैं। वे इस दूरी को पाटें तब कहीं अपनी वाञ्छित वस्तु का उपयोग करें। तू जिस वस्तु को चाहे झट पास बुला ले। विषयों का तेरा चुनाव अशुद्ध रहता है। इसी से तुझे दुःख की प्राप्ति होती है। अपनी स्थिति को स्वयं स्वर्ग अथवा नरक बना लेना तेरे अपने अधीन है। स्वर्ग का राजा है- इन्द्र। आत्मा ही स्थायी सुखों का नेता है- स्वामी है। वही नर है। नर अथवा नारी एक ही चीज है। तू उस आत्मा का ध्यान कर। उसी को अपनी स्तुति का पात्र बना। उसके गुणों का ध्यान कर, कीर्त्तन कर। तू अपने आनन्द की खोज उसी वस्तु में कर जिससे आत्मा की तृप्ति हो।

एक छोटा देवलोक तो यह शरीर ही है। इसमें काम कर रही सभी इन्द्रियाँ देव हैं। इन देवों का देवाधिदेव आत्मा है। इनकी संपूर्ण शक्ति आत्मा के कारण है। आत्मा सुखी है तो ये भी सुखी हैं। आत्मा को क्लेश हो तो भी किसी इन्द्रिय को भी चैन से रहने का अवसर नहीं मिल सकता। जहाँ इन्द्रियों का सुख आत्मा के सुख से विपरीत हो, वह सुखाभास हो तो हो, वास्तविक सुख नहीं। उस सुख का अन्त दुःख ही है। आध्यात्मिक शान्ति ही वास्तविक शांति है। उस शान्ति के रहते ही भौतिक जीवन में शान्ति प्राप्त हो सकती है।

बड़े पैमाने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देव-लोक है। इसमें स्थल-स्थल पर देवताओं की क्रीड़ा हो रही है। प्रत्येक देवता आनन्द में मगन है। इन देवताओं का देवाधिदेव परमात्मा है। वास्तविक लीला उसी की है। उसी की शक्ति से अन्य सब देव शक्तिशाली हैं। उसी के आनंद से सब आनन्दित हैं।

मेरे मन! तुझे आनन्द की तलाश है तो उस आनन्दस्वरूप के संयोग ही से आनन्दित हो। स्तुति का पात्र वही है। आत्मा 'उप-स्तुत' है। परमात्मा की स्तुति में उपस्तुति -गौण स्तोत्र-आत्मा का भी हो जाता है।

देवताओं को हवि चाहिए। बिना अग्नि के हवन नहीं होता। देवताओं का हव्यवाट् अग्नि है। शरीर की अग्नि आत्मा है, विश्व की परमात्मा। जहाँ आत्मा ने शरीर को छोड़ा, इन्द्रियों के रहते भी उसमें उपभोग की शक्ति नहीं रहती। बिना आत्मा के न शरीर का विकास ही होना संभव है, न किसी निर्जीव अंग द्वारा सुख-दुःख की अनुभूति ही हो सकती है।

शरीर की सब चेष्टाएँ आत्मा की विद्यमानता ही का फल हैं। ऐसे ब्रह्माण्ड में परमात्मा की स्थिति से ही व्यवस्थता है, नियन्त्रण है, नियमित गति है।

शक्ति प्रभु से आती है। और तो और, हमारा अपना शरीर ही कई अंशों में हमसे स्वतन्त्र है। यह हमारे अधीन किया गया है। आखिर इसके परमाणु हैं तो इसी ब्रह्माण्ड ही का एक भाग, जिसकी सत्ता हमसे सर्वथा स्वतन्त्र है। फिर भी यह हमारा उपकरण बन रहा है। किसी महान् व्यवस्था से ही हमारा इसका सम्बन्ध हुआ। फिर और वस्तुओं का तो कहना ही क्या है? ब्रह्माण्ड का एक बहुत बड़ा काम हमारे वशीभूत हो रहा है। यह उसी देवाधिदेव प्रभु की कृपा है।

मेरे मन ! तू उसी की शरण जा। उसके गुण-गान से कृतज्ञता की भावना होगी। विनय का अभ्यास होगा, 'हव्य-वाहन' की ओर रुचि होगी। जीवन नाम ही 'हव्य-वाहन' का है। किसी के काम आना, किसी की आवश्कता पूरी कर देना, भूखे को भोजन, नंगे को वस्त्र, लूले को गति, गूँगे को वाणी देना 'हव्य-वाहन' है।

मेरे मन! क्या तू स्वयं भूखा नहीं, प्यासा नहीं, लूला नहीं, लँगड़ा नहीं? तू अपाहज न भी हो, सभी चेष्टाएँ तेरी अपनी हों भी, पर यदि संसार में और कोई वस्तु न हो और तेरा उससे कोई सम्बंध न हो, तेरी पहुँच से ही संसार बाहर हो तो तू चलता-फिरता क्या अपाहज न हो जाए! कोई तेरा 'हव्यवाट' हुआ है, तू दूसरों का 'हव्यवाट्' बन। हव्यवाट् की वास्तविक स्तुति यही है।

शांतिप्रवाह
(पुनर्प्रकाशन)
मार्च २०१०

यज्ञ का रहस्य

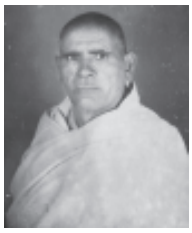

❐स्व० श्री चन्द्रभानु आर्य संस्थापक शांतिधर्मी

कोई भूखा न रहे कोई अभावग्रस्त न रहे यही यज्ञ का रहस्य है।

एक मनोरंजक कथा है– एक धनी कंजूस पानी में डूब रहा था। कुछ सज्जन उसे बचाने का प्रयास कर रहे थे। वे बार बार कह रहे थे– लाओ, अपना हाथ मुझे दो– पर वह हाथ नहीं बढ़ा रहा था। एक युवक उसके रहस्य को जानने वाला आया। उसने आगे बढ़कर कहा– लो, मेरा हाथ पकड़ लो– डूबने वाले ने झट से अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और उसे बचा लिया गया। उस व्यक्ति ने देना सीखा ही नहीं था, केवल लेना सीखा था। वह तो बच गया देने वाले की उदारता से। लेकिन जो केवल लेना जानता है, देना नहीं जानता, वह बचता नहीं है।

जो केवल लेना जानता है, देना नही जानता– वह ईश्वर और प्रकृति का अपराधी है। जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। जो बांटकर खाता है वह जीवन का असली आनन्द उठाता है। जहाँ लेना है, वहाँ देना भी है। देने के बिना लेना अधिक समय तक नहीं चल सकता। एक बार मैं एक गांव में दान की बात कर रहा था। मेरे बाद एक संन्यासी महोदय ने कहा कि ये बेचारे कृषक हैं, ये बेचारे क्या दान करेंगे? इनका अपना काम ही मुश्किल से चलता है। मैंने कहा कि जितना कृषक देता है उतना तो और कोई मनुष्य क्या देगा! और तो लेकर, कमाकर देते हैं। वह तो कमाते कमाते, बोते बोते, उगाते उगाते देता है। न जाने कितने प्राणी उसके अन्न से पेट भरते हैं। लेकिन यह तो एक और बात है। देने में समर्थ होने या धनाढ्य होने की बात नहीं है। देना कोई धन का ही नहीं होता। यह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसे प्रसन्नता चाहिए। जो प्रसन्नता उसे देने में मिलती है, लेने में नहीं मिल सकती। वह बिना सामर्थ्य के भी देता है। माता पिता अपने बच्चों को सामर्थ्य से भी अधिक देते हैं। माता स्वयं भूखी रहकर अपने बच्चे को खिलाना चाहती है। बच्चे को भूखा छोड़कर खाने वाली माँ क्या प्रसन्न होगी? बच्चे को पुराने वस्त्र देकर स्वयं मंहगे वस्त्र पहनने वाला पिता क्या प्रसन्न होगा? और उन्हें देकर क्या वे वंचित रह जाएँगे?

बस थोड़ा आगे बढ़कर सोचने की आवश्यकता है। यह पूरी पृथिवी, यह जड़ चेतन सृष्टि एक परिवार ही तो है। वेद यही तो कहता है कि एक दूसरे से ऐसे प्यार करें जैसे माँ अपने बेटे से करती है। अरे नहीं, माँ भी गौ माँ जैसे अपने नवजात बछड़े से करती है। परिवार के सदस्य सब एक दूसरे से ऐसे प्यार करें।

जो आस्तिक और ईश्वर विश्वासी है, वह किसी को पराया समझेगा भी तो कैसे? उसके लिए तो मनुष्य ही नहीं, सब प्राणी उसके परिवार के सदस्य हैं। सारी सृष्टि उसे निरन्तर दिये जा रही है। उसके पास अपना कुछ है भी तो नहीं। जो भी कुछ है, किसी न किसी का दिया हुआ ही है। उसका शरीर, उसका जीवन, उसके प्राण, उसका अन्न, उसके विचार-- अगर वह कुछ देगा नहीं तो कर्जदार नहीं हो जाएगा?

इस सृष्टि में लेना और देना साथ साथ चलते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह एक व्यवस्था है। वैदिक साहित्य में इस व्यवस्था को यज्ञ कहा गया है। यह देना और लेना ही है। (हु दानादानयोः) देकर ही लेना हो सकता है। यह इस सृष्टि की सुन्दरता है कि इसमें लिए बिना किसी का काम ही नहीं चल सकता। चाहे वह चक्रवर्ती सम्राट् ही क्यों न हो। ईश्वर से, प्रकृति से, अन्य प्राणियों से-- लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि उसे देना भी पड़ता है। जो देगा नहीं वह लेगा कहाँ से? जो स्वेच्छा से, शुभ संकल्प से देता है– उसका देना 'दान' बन जाता है। वह लेने वाले को तो प्रसन्न करता ही है, देने वाले को भी आनन्द की अनुभूति कराता है। वह नष्ट नहीं होता। (हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति) जो स्वेच्छा से, शुभ संकल्प से नहीं देता, उसे भी देना तो पड़ता ही है, पर उसका देना नष्ट होना होता है। 'तस्य तृतीया गतिर्भवति' जो कुछ मिला है दूसरों से, प्रकृति के रूप में ईश्वर से– वह आदान प्रदान के लिए मिला है। जो न आदान करता है, न प्रदान करता है उसका धन तो नष्ट ही होगा। वह तो उससे छूटेगा ही। कोई उसको बाँध ाकर कब तक रखेगा।

दान का अर्थ यह नहीं है कि धनवान ही देगा। जो धनवान है और उसके अन्दर देने की भावना है तो वह सम्मान का पात्र है परन्तु देने के लिए धन की नहीं, विशाल हृदय की आवश्यकता है। एक निर्धन विद्वान् क्या दान नहीं कर सकता! वह विद्या का दान करेगा। दान के लिए पवित्र भावना चाहिए, शुभ संकल्प चाहिए। धन तो विद्या का, शक्ति का, अन्न का, सेवा का– कुछ भी हो सकता है।

यह देना और लेना सुखी जीवन शैली का एक रहस्य है। प्रकृति के कण कण में यह निरन्तर हो रहा है। जो दे रहा है वह ले भी रहा है। यही संस्कृति है। कोई भूखा न रहे कोई अभावग्रस्त न रहे यही यज्ञ का रहस्य है।

मन में तुझे निहारा।।

मंदिर, मस्जिद, गिरजा खोजा, खोज लिया गुरुद्वारा।
ठौर मिला ना तेरा भगवन, खोज लिया जग सारा।।
काशी, मक्का, हरिद्वार और जा खोजा ननकाना।
खोज लिया साकेत द्वारका, फिर खोजा बरसाना।।
भूख, प्यास, निद्रा तज कर के, मन भर भोग लगाया।
मौन धरा उपवास किए और, चंदन तिलक लगाया।।
चार धाम सब तीरथ पूजे, पुष्कर खूब नहाई।
पावन गंगे मइया में भी, डुबकी खूब लगाई।।
राम, श्याम, शिव-कैलाशी की, रातों महिमा गाई।
हनुमत का चालीसा गाया, दुर्गे महिमा गाई।।
हिंदू, सिख, मुस्लिम बन देखा, बन देखा ईसाई।
कुरान, पुराण भी पढ़ देखे, दोगे कहाँ दिखाई।!
सभी यत्न करके तन हारा, अब ये मन भी हारा।
कहाँ मिलेगा तू परमेश्वर, खोज लिया हर द्वारा।।
जगत् खोज कर पार पड़ी ना, मिटा नहीं अँधियारा।
आलोकित संसार हुआ, जब मन में तुझे निहारा।।

मन भीगे हैं, तन रीते हैं। ऐसे, हम कैसे जीते हैं!!
आपाधापी है जीवन में,
विश्वास नहीं रहा मन में।
सब रिश्तों पर कसे हुए,
खुदगर्जी वाले फीते हैं।
ऐसे, हम कैसे जीते हैं!!

माथे पर कसाव हुआ है,
जैसे नत्थी तनाव हुआ है।
यही द्वंद्व उलझाए रखता,
क्या हारे हैं, क्या जीते हैं!
ऐसे, हम कैसे जीते हैं।।

तुच्छ बातों पर झल्लाते,
दूजे के दु:ख में सुख पाते,
घृणा और प्रतिशोध पालते,
पशुओं से गुजरे बीते हैं।
ऐसे, हम कैसे जीते हैं।।

पूर कर धागे प्रेम सूत के,
आओ जख्मों को सीते हैं।
मुश्किलों को आजमाकर,
चलो नवजीवन जीते हैं! आओ! कुछ ऐसे जीते हैं!!

कवयित्री :
❒डॉ॰ (श्रीमती) अनीता ढांडा प्राध्यापिका
राजकीय संस्कृति मॉडल स्कूल, जींद-१२६१०२

अंतकाल तक इन साँसों का आना जाना लगा रहेगा।
तन कुसुमों का उपवन में खिलना मुरझाना लगा रहेगा।।

कभी रुलाकर हँसा किसी को कभी हँसाकर रोया होगा।
अटल विधान है विधिना का जो काटा वही बोया होगा।।
अपनी करनी अपनी भरनी दोष किसी को देना कैसा!
सुख तिनके से भी हलका था दु:ख का बोझा ढोया होगा।
बारी बारी धूप छाँव का आना जाना लगा रहेगा।।

पलकें दिन में भारी हुई तो कभी रात भर जगा भी होगा।
कभी तू लुटकर आया होगा कभी किसी को ठगा भी होगा
कभी समेटी जी भर माया कभी मार कर ठोकर आया।
काया माया दोनों ठगिनी कर्म सदैव सगा ही होगा।।
मन व्यापारी लेन देन का ताना बाना लगा रहेगा।।

कल छल बल से शिखरों को रौंदा आज गर्त में वास किया
सबको गले लगाया तब अब मन को पशुता का दास किया
कभी क्रोध से रहा सुलगता कभी मन प्रेम का कलश भरा
कभी झुका चरणों में दंडवत कभी उसका उपहास किया।।
त्याग भोग में मन भरमाना, खोना-पाना लगा रहेगा।।

सृष्टि की चिरंतन शाश्वत,
मैं नदी का निर्मल जल हूँ।

कुछ उथले और कुछ गहरे,
कुछ गतिमान तो कुछ ठहरे,
आतुर भावों का संबल हूँ।
मैं नदी का निर्मल जल हूँ।

कभी अर्घ्य कभी हूँ चरणामृत,
कहीं लवणयुक्त कहीं हूँ अमृत,
कभी सघन हूँ कभी विरल हूँ।
मैं नदी का निर्मल जल हूँ।

कभी बंधा हूँ कभी स्वच्छंद,
कभी अति तीव्र कभी मंद,
कभी कठिन कभी सरल हूँ।
मैं नदी का निर्मल जल हूँ।

राष्ट्र-चिन्तन

आर्यसमाज के करुणा वारियर्स

❑डॉ० विवेक आर्य

आजकल 'कोरोना वारियर्स' के अभिनन्दन की चर्चा मीडिया में है। विषम परिस्थितियों में कार्य करने वाले सभी राष्ट्रसेवकों को नमन। आर्यसमाज रूपी महान संस्था को जनहित के लिये कार्य करते १४० वर्ष से अधिक हो गए हैं। आर्यों ने अनेकों कष्ट सहकर विभिन्न क्षेत्रों में अपने पुरुषार्थ से अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। शिक्षा, सामाजिक और ध ार्मिक क्षेत्र में महान क्रान्ति में आर्यसमाज का विशेष योगदान है। इस लेख में मैं अनेक ऐसे महान व्यक्तियों के कार्यों का संक्षिप्त परिचय दूंगा जिन्हें हम प्राय: विस्मृत कर चुके हैं।

-पिछली सदी के आरम्भ में पंजाब में प्लेग ने अनेक बार दस्तक दी। आर्य सेवक रुलियाराम गांव गांव जाकर प्लेग के उन मरीजों की सेवा करते जिन्हें स्वयं उनके घरवाले छोड़कर चले जाते। उनकी सेवा देखकर ईसाई मिशनरियों के पांव उखड़ गए। वे बोलते- रुलियाराम के होते हमारी दाल यहाँ नहीं गलेगी। उनके अथक प्रयासों का परिणाम था कि अमरीकन ईसाई मिशनरी स्कॉट जो भारत को ईसाई बनाने आया था, वह स्वयं आर्यसमाज शिमला में शुद्ध होकर आर्य बन गया।

-कांगड़ा में भूकंप आया। लाला लाजपतराय अनाथ बच्चों को लेने पहुंच गए। ईसाई मिशनरी ने जब देखा कि शिकार हाथ से निकल रहा है तो लाला जी पर बच्चा चोरी का आरोप लगाकर कोर्ट में घसीट लिया। लाला जी ने कोर्ट केस लड़ा और गैर ईसाई संस्थाओं को अनाथ बच्चों और विधवाओं की सेवा करने का कानूनी हक दिलवाया। पहले यह अधिकार केवल ईसाई संस्थाओं को ही था। आर्यसमाज ने अनेक अनाथालय बरेली, भिवानी आदि में स्थापित किये।

-उत्तराखंड की नायक जाति में वेश्यावृति की कुप्रथा थी। लाला लाजपतराय गए और उनकी पंचायत को समझाया। उन्होंने अपनी बेटियों को घृणित काम से हटा लिया। उन्हें कामगार कारखाना लगाकर शिल्प कार्य करना सिखाया गया। ऐसे इस कुप्रथा से मुक्ति मिली।

-जम्मू में मेघ समाज अशिक्षित और अनपढ़ था। उसका शोषण होता था। आर्यसमाज के महाशय रामचंद्र ने उन्हें पढ़ाना और धर्मशिक्षा देना आरम्भ कर दिया। उनकी स्वजाति के लोगों ने उनका विरोध किया। वे नहीं माने। उन पर लाठियों की बरसात कर उन्हें अधमरा कर दिया गया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। बाद में उनके कार्य की महत्ता जानकर उन्हीं के समाज ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया।

-सियालकोट के मेघ निर्धन थे। इसलिए ईसाई मिशनरीज के शिकार हो जाते थे। आर्यसमाज के लाला गंगाराम और उनके मित्रों ने मिलकर सियालकोट के बाहर एक बंजर जमीन पर आर्यनगर बसाया। उसमें उन परिवारों को बसाया। उन्हें शिल्प आदि कार्य सिखाया। वे सब उन्नति के मार्ग पर चले।

-रोपड़ के पंडित सोमनाथ जी दलितों के उद्धार कार्य में लग गए। उनके समाज के लोगों ने उन पर कुएं से जल लेने से प्रतिबंध लगा दिया। वे नदी से अशुद्ध जल लेने लगे। उससे उनकी माताजी बीमार हो गई। वैद्य ने कहा- शुद्ध जल चाहिए अन्यथा वह नहीं बचेंगीं। सोमनाथ जी परेशान! दलितों का उद्धार करे या माता के प्राण बचाये। माताजी समझ गई। उन्होंने बुलाकर कहा कि मैं वृद्ध हूँ। एक न एक दिन तो जाना ही है। तुम मेरे प्राणों की चिंता मत करो। अपना कार्य करते रहो। माता जी चल बसीं। पर दलितोद्धार का कार्य नहीं रुका।

- मास्टर आत्माराम अमृतसरी लाहौर से गुजरात दलित बच्चों के लिए आवासीय विद्यालय खोलने के लिए गए। उन्होंने विद्यालय खोलने के लिए घर देखना आरम्भ किया। जब मकान मालिक को मालूम पड़ता कि वे दलितों के बच्चों के लिए आवास लेना चाहते हैं तो वे मना कर देते। अंत में उन्होंने एक भूत बंगले के नाम से प्रसिद्ध खण्डहर मकान का पुनरुद्धार कर उसमें विद्यालय खोला। उनके इन प्रयासों से गुजरात में हजारों दलितों के बच्चों का जीवन बदल गया।

-लाला देवराज ने कन्याओं की शिक्षा के लिए जालंधर में विद्यालय खोलना चाहा। कोई उन्हें अपनी लड़की पढ़ाने के लिए ही नहीं देता था। एक बार तो उनकी धोती पकड़कर उन्हें सड़कों पर घसीटा तक गया। पर वे अडिग रहे। अंत में उत्तर भारत की पहली कन्या पाठशाला जालंधर में उनके प्रयासों से स्थापित हुई।

-दिल्ली के दलितों की मांग थी कि उन्हें सार्वजानिक कुओं से पानी भरने दिया जाये। स्वामी श्रद्धानन्द ने यह घोषणा कर दी कि वे जुलूस के माध्यम से दलितों को सार्वजनिक कुओं से पानी भरने का अधिकार दिलाएंगे। दिल्ली के मुसलमानों ने घोषणा कर दी कि वे दलितों को पानी नहीं भरने देंगे, क्योंकि वे सूअरों का मांस खाते हैं और इस्लाम में सूअर हराम हैं। स्वामीजी ने प्रत्युत्तर दिया कि मांस तो मुसलमान भी खाते हैं। क्या वे उन पर भी पाबन्दी लगाएंगे? आर्यसमाज के प्रभाव से दलितों ने मांसाहार त्याग दिया है। तय दिन स्वामी जी के नेतृत्व में जुलूस निकला। मुसलमानों ने पत्थरबाजी की। पुलिस ने आकर बीच बचाव किया। स्वामीजी ने सार्वजनिक कुँए से सभी को पानी पिलाया। (महाड़ में डॉ० अम्बेडकर द्वारा जलाशय से पानी पिलाने की बात तो सभी करते हैं, पर देश की राजध

ानी में ऐसा महान कार्य हुआ। यह कोई नहीं कहता।)

–बेरी (हरियाणा) के खेतों में आर्यसमाज से प्रभावित होकर आर्यसमाजी जाटों ने दलितों के लिए कुआँ खुदवा दिया। इससे नाराज होकर बेटे की ससुराल वालों ने रिश्ता तोड़ दिया, पर वे जमींदार समाज सेवा का संकल्प लिए हुए थे। जिस बालक का रिश्ता टूटा था वे आगे चलकर केंद्रीय मंत्री प्रो० शेरसिंह के रूप में जाने गए।

– स्वामी दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर इंदौर के मेघराज जाट अपने यहाँ के दलितों को पढ़ाने और धार्मिक संस्कारों की शिक्षा देने लगे। उनकी बिरादरी वालों ने उन पर जंगल में हमला कर दिया। उनकी मृत्यु हो गई। क्या कभी ऐसा उदाहरण आपने पढ़ा है? जब एक सवर्ण ने दलितों के उद्धार के लिए अपने प्राण दिए हों?

–लोहारू के नवाब ने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किये। आर्यसमाज ने उसका प्रतीकार किया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द के नेतृत्व में आर्यसमाज के उत्सव का जुलूस निकला। जुलूस पर नवाब के गुंडों ने हमला कर दिया। स्वामी जी के सर पर कुल्हाड़े से हमला हुआ। स्वामी जी घायल हो गए मगर झुके नहीं। अंत में आर्यसमाज को सफलता मिली।

–केरल में १९२१ में मालाबार में भयानक दंगे हुए। हजारों हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना दिया गया। कई सौ की लाशें कुओं में फेंक दी गईं। आर्यसमाज लाहौर से उठकर सुदूर केरल गया। महीनों तक राहत शिविर चलाये। हजारों को वापिस शुद्ध किया। अनेकों कष्ट सहकर यह कार्य किया। यह मानव सेवा का अप्रतिम उदाहरण है।

–हैदराबाद में निजाम ने हिन्दुओं पर मजहबी अत्याचार किये। मंदिरों के निर्माण, पुनरुद्धार, धार्मिक उत्सव, जुलूस निकालने पर पाबन्दी लगा दी। अनेक हिन्दुओं को प्रताड़ना या प्रलोभन से मुसलमान बनाया जाने लगा। आर्यसमाज ने इस मजहबी अत्याचार के विरोध में १९३९ में जेल भरो अहिंसात्मक आंदोलन प्रारम्भ किया। गाँधीजी ने इस आंदोलन का विरोध किया। इस आन्दोलन में आर्यसमाज के ३५ कार्यकर्ताओं का बलिदान हुआ। निजाम को झुकना पड़ा।

–लोग अन्धविश्वास के चलते भोजन बनाकर चौराहों पर डाल देते थे। उनका विश्वास था कि जो इस भोजन को खायेगा उसको ओपरी पराई चिपक जायेगी और उनके बच्चे ठीक हो जायेंगे। हांसी में आर्यसमाजी लाला रामकिशन आर्य से यह अन्धविश्वास देखा नहीं गया। वे अपने दो पुत्रों को लेकर चौंक पर गए। उस भोजन को उन्हें खिलाया और कहा–देखो! मेरे पुत्रों को कुछ नहीं हुआ। आप यह भूतप्रेत अंधविश्वास छोड़ो। पाठकों की जानकारी के लिये बता दूँ कि रामकिशन जी मेरे परदादा जी थे। मेरे स्वर्गीय दादा जी ८५ वर्ष तक जिए और उनके बड़े भ्राता ९८ वर्ष तक जिए।

ये कुछ थोड़े से उदाहरण हैं। आर्यसमाज के इतिहास में ऐसे हजारों महान कार्य उसके 'करुणा वारियर्स' ने मानव सेवा के लिए किये। उन सभी महान आत्माओं को नमन।

आर्यसमाजी प्रचार और जाट बिरादरी

❐गुरप्रीत चहल, सिरसा

कुछ दिनों से इण्टरनेट पर आर्यसमाज के बारे में गलत प्रचार किया जा रहा है। जाट समाज के युवाओं व एस सी भाईयों के मन में आर्यसमाज के बारे में भ्रांति फैलाई जा रही है। आर्यसमाज के दलितोद्धार से प्रभावित होकर स्वयं बाबा साहब अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक "What Gandhi and Congress have done to untouchables" में आर्यसमाज के सबसे बड़े नेता स्वामी श्रद्धानंद जी बारे लिखा था कि 'स्वामीजी दलितों के सबसे बड़े हितैषी व हीरो हैं'। ये तो थी दलितों की बात। अब आते हैं जाटों पर। जाटों में आर्यसमाज के प्रचार से क्या फायदे हुए थे, इस पर जाट गजट में दादा छोटूराम ने काफी विस्तार से लिखा है। जिसका कुछ अंश इस प्रकार है ----'आर्यसमाज ने हरयाणा में अपने सिद्धांतों का प्रचार आरम्भ किया व इसका विशेष प्रभाव जाटों पर पड़ा। मैं यह मानने के लिए तैयार हूं व अत्यधिक कृतज्ञता के साथ मानने के लिए तैयार हूं कि आर्यसमाज के प्रचार ने जाटों के अंदर कौमी अहसास की भावना पैदा की। आर्यसमाज व उनके उपदेशक–नेता हमारे साथ अत्यधिक हमदर्दी का सलूक करते रहे। जाट कौम के विकास व कल्याण के लिए हर वक्त प्रयत्नशील रहे। विकास के रास्ते सुझाये व नतीजा यह हुआ कि जाटों में जागरूकता आयी, जिसके फलस्वरूप जाट स्कूल खुला, जाट सभाएं बनीं व जाट गजट जैसे अखबार प्रकाशित हुए। जाट कौम के हितैषियों का समय, पैसा, रसूख व ध्यान कौमी संस्थाओं की तरफ अधिक होने लगा। हरयाणा क्षेत्र की जो जाट कौम पन्नों की तरह बिखरी हुई थी वह एकजुट हुई, जिसका माध्यम आर्यसमाज की जागरूकता के फलस्वरूप बने जाट संस्थान थे। मैं यह मानता हूं कि आर्यसमाज के प्रचार से जाटों को बहुत फायदा पहुंचा'---- रहबर ए आजम चौधारी छोटूराम (जाट गजट , ९ जुलाई, १९१८ पृष्ठ ७–८)

ये विचार थे दादा छोटूराम जी के आर्यसमाज व जाटों पर। मेरा मानना है कि आज जो व्यक्ति आर्यसमाज पर अपनी निजी अहम व राजनीतिक समीकरणों के कारण बकवास पेल रहे हैं उन्हें यह लेख पढ़ना चाहिए। यह लेख करीब १०० वर्ष पुराना है। उस समय के समाज के हालात व आर्यसमाज के कारण आये बदलाव को प्रत्यक्ष देखकर दीनबन्धु छोटूराम जी ने यह लेख लिखा था।

वैदिक आर्य संस्कृति का मूल

❒**महिपाल आर्य,** संस्कृत प्राध्यापक पर्व प्रधान हसला **(सम्पर्क : 94161677041)**

प्राचीन पंजाब-हरियाणा की वर्तमान भूमि अत्यंत प्राचीन काल से आर्यों की मूल स्थली रही जहां वैदिक संस्कृति का विकास हुआ, यही हमारा मंतव्य है। परंतु अधिकांश पाश्चात्य तथा भारतीय इतिहासकार इस विषय को अब तक विवादास्पद ही मानते आए हैं। उन्हें इस बात में संदेह रहा है कि आर्य भारत के मूलनिवासी भी थे या नहीं। इसी मुख्य प्रश्न के साथ सिंधु सभ्यता तथा ऋग्वेद का रचनाकाल आदि प्रश्न भी जुड़े हैं। सिंधु सभ्यता भी इसी देश का मुख्य अंग रही है, जो अति प्राचीन है। क्या आर्य बाहर से आए थे? इस विषय के प्रत्युत्तर में हमने शांति धर्मी पत्रिका के पिछले अंकों में लेख दिया था, जो ध्यातव्य है। हरियाणा के राखीगढ़ी नामक स्थान से निकले हजारों वर्ष पुराने दो कंकालों के वैज्ञानिक विश्लेषण ने सिद्ध कर दिया है कि आर्य भारत के ही मूल निवासी थे तथा उनमें और द्रविड़ों में कोई अनुवांशिक अंतर नहीं है। अब हम आर्यों के मूल अभिजन के बारे में संक्षिप्त लेख लिख रहे हैं।

आर्यों के मूल निवास का प्रश्न नाटकीय ढंग से अकस्मात् उस समय खड़ा हुआ जब १७८६ ईस्वी में बंगाल के उच्च न्यायाधीश सर विलियम जोंस ने संस्कृत, ग्रीक, लेटिन, अवेस्ता जैसी प्राचीन भाषाओं में अद्भुत साम्य देखकर यह विचार किया कि ये भाषाएं किसी एक मूल भाषा से विकसित हुई होंगी और उनके बोलने वाले भी सुदूर अतीत में किसी एक स्थान पर एक साथ रहते होंगे। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर कुछ विद्वानों ने उस मूल भाषा की कल्पना भी कर ली जिसे आर्यन इण्डो-जर्मन, इण्डो यूरोपियन (भारोपीय) भाषा का नाम दिया गया और उन निवासियों को भी आर्य भारोपीय (indo-european) अथवा उक्त भाषाओं में पुरुषवाचक वीर (Wiros) शब्द से अभिहित किया गया।

उक्त निश्चय के साथ ही पाश्चात्य विद्वानों में तो अपने अपने देश को भारोपीय अथवा आर्यों का आदि देश सिद्ध करने की मानो होड़ सी लग गई। भारोपीय भाषा के संदर्भ में आर्यों के मूल निवास का प्रश्न विवादास्पद बन गया। आर्यों का मूल निवास स्थान कहाँ था, इस संबंध में बहुत अधिक मतभेद हो गए। किसी ने हंगरी ऑस्ट्रिया तो किसी ने जर्मनी, नार्वे स्वीडन को आर्यों का मूल अभिजन घोषित किया। किसी ने पोलैंड, दक्षिणी रूस या डेन्यूब नदी के तटवर्ती विस्तृत घास के मैदान को कृषि कर्मी और अश्वारोही आर्यों के निवास योग्य प्रदेश माना।

यूरोपीय विद्वान मध्य एशिया अथवा दक्षिण पूर्वी यूरोप में आर्यों के मूल निवास होने का अनुमान करते हैं। अनुसंधानकर्ताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं- मैक्समूलर, एडवर्ड, मेयर आदि। उन्होंने मध्य एशिया, तामीर के पठार को ही आर्यों का उपयुक्त जन्म स्थान बताया। किंतु बाद में मैक्समूलर अपने मत में और अधिक सुधार करके केवल एशिया को आर्यों की जन्मभूमि मानता है। उसका कहना है कि आर्य दो दलों में विभक्त होकर दो दिशाओं में गए। एक दल पूर्व दक्षिण तथा दूसरा दल पश्चिम की ओर गया। जो दल पूर्व दक्षिण को गया वह पहले आक्सस और जाकीज नदियों के किनारे बसा और उसके उद्गम की ओर खोरबंद तथा बदख्शां की उच्च भूमि पर पहुंचा, जहां उसकी दो शाखाएं हुई। एक दल फारस की ओर चला गया तथा ईरान, अरब मिश्र आदि की तरफ बढ़ गया। दूसरा काबुल नदी के साथ बढ़कर भारत में आया वह आर्य कहलाया। जो दल पश्चिम की ओर गया वह कैस्पियन सागर तक तो एक ही दल में गया था पर वहां से अनेक शाखाएं यूरोप में फैल गईं।

डॉक्टर धीरेंद्र वर्मा, हार्नले, ग्रियर्सन आदि इस बात के समर्थक हैं कि आर्य भारत में कई बार में आए हैं और यदि कई बार नहीं तो दो बार अवश्य आए हैं। उनका मत है कि नवागत आर्य अपने को पूर्ववर्ती आर्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते थे और वे हिमालय और विंध्य के मध्य में सरस्वती और दृषद्वती नदी के तट पर रहते थे। डॉक्टर वर्मा ने 'मध्य देश का विकास' नामक अपनी ऐतिहासिक पुस्तक में लिखा है कि ''प्राचीन भारतीय ग्रंथों में आर्यों के भारत आगमन के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है, केवल पुराने ढंग के भारतीय विद्वानों का मत है कि आर्य लोगों का मूल स्थान तिब्बत में किसी जगह पर था। वहीं मनुष्य की सृष्टि हुई थी और उसी स्थान से संसार में लोग फैले। भारत में भी आर्य वहीं से आए थे। (*अब इन नये ढंग के विद्वान से यह कौन बताये कि आर्य त्रिविष्टप् से इस भूखंड पर तब आये थे जब देशों के नामकरण भी नहीं हुए थे। उन्होंने ही इस देश को बसाया था और इसका नामकरण भी आर्यावर्त्त के रूप में*

किया था। उनसे पहले इस भूखण्ड पर कोई नहीं बसता था।– सम्पादक) ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के आधार पर लोकमान्य पंडित बाल गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती प्रदेश में आर्यों का मूल स्थान होना प्रतिपादित किया था, इस कल्पना का खंडन करते हुए बंगाल के एक विद्वान अविनाश चंद्र बोस ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वैदिक इंडिया' में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्यों का मूल स्थान भारत में सरस्वती के तट पर अथवा उसी के उद्गम के निकट हिमालय के अंदर के हिस्से में कहीं पर था। उनके मतानुसार प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मावर्त देश की पवित्रता का कारण कदाचित यही था। यहीं से जाकर आर्य लोग ईरान में बसे, जिस पर भारतीय आर्यों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बाद को भगाई जाने पर यूरोप के मूल निवासियों को विजय करके यह जाति वहां जा बसी थी। यूरोपीय भाषाओं में इसीलिए आर्य भाषा के चिह्न बहुत कम पाए जाते हैं।'' निष्कर्ष रूप में डॉक्टर वर्मा ने लिखा है कि आर्यों के मूल स्थान के विषय में निश्चयपूर्वक अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता। संसार के विद्वानों का– जिनमें यूरोप के विद्वानों का आधिक्य है, आजकल यही मत है कि आर्यों का आदिम स्थान पूर्वी यूरोप में बाल्टिक समुद्र के निकट कहीं पर था।

डॉक्टर वर्मा के उक्त मत का खंडन करते हुए ईरानी विद्वान आर्यों का मूल स्थान भारत में मानते हैं। स्वामी दयानंद जी भी भारत को ही आर्यों का मूल स्थान मानते हैं। सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में मनुस्मृति के श्लोक–

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।। २/२

के हवाले से आर्यावर्त की सीमाओं का निरूपण करते हुए स्वामी दयानंद ने लिखा है कि 'हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पर्वतों के भीतर और रामेश्वर पर्यंत विंध्याचल के भीतर जितने प्रदेश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिए कहते हैं कि यह आर्यावर्त देश देवो अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त कहलाया।' आजकल विंध्याचल को उत्तर और दक्षिण भारत को पृथक् करने वाला पर्वत माना जाता है। वास्तव में यह पूर्वी और पश्चिमी घाट नामक पर्वतमाला का नाम है, तभी स्वामी दयानंद ने रामेश्वर पर्यंत शब्दों का प्रयोग किया है। बाल्मीकि रामायण के किष्किंधा कांड का ६०/७ श्लोक भी इसकी पुष्टि करता है। वराहमिहिर भी अपने बृहत्संहिता अध्याय ४ में तथा बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र में आर्यावर्त की सीमा का समर्थन करते हुए सात कुल पर्वत और सात नदियों का उल्लेख करता है। मनुस्मृति में २/१७ श्लोक अनुसार ब्रह्मावर्त्त देश की सीमा (सरस्वतीदृषद्वत्योः ---ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते।) बताते हुए यहां सरस्वती और दृषद्वती नदियों को देवनदी कहा गया है जो इनके देवलोक से निस्सृत होने का संकेत करता है, वहीं ब्रह्मावर्त्त देश को देवनिर्मित कहा गया है जो इस बात का संकेत कर रहा है कि देवलोक (कैलाश मानसरोवर) से फैलते–फैलते जो आर्य (देव) यहां बस गए थे, उन्हीं के द्वारा यह देश बसाया गया है। यह उसके प्रति आदर भाव व प्रतिष्ठा का द्योतक है।

आर्यों के मूल स्थान की समस्या पर विचार करते हुए प्रोफेसर देवेंद्रनाथ शर्मा लिखते हैं– 'भारत यूरोपीय भाषा भाषियों को कुछ विद्वानों ने 'आर्य' कहना पसंद किया। यह शब्द शाखा विशेष के लिए रूढ हो गया है। फिर भी सामान्य रूप से आर्य शब्द का प्रयोग उसके व्यापक अर्थ में करने में कोई हानि नहीं है। आर्यों का अर्थात् मूल भारत–यूरोपीय भाषाओं के बोलने वालों का स्थान कहाँ था, इसे लेकर एकमत्य नहीं है। भारत से लेकर उत्तर पश्चिम में स्कैंडिनेविया तक और उत्तरी ध्रुव से लेकर कास्पियन सागर के तट तक आर्यों के मूल स्थान को स्थापित करने की चेष्टा की गई है। वस्तुतः इस विषय को लेकर जो विभिन्न मतवाद प्रवर्तित हुए हैं, उनका अध्ययन एक स्वतंत्र विषय है। दो सौ अढाई सौ वर्षों तक अद्यतन इस विषय पर विभिन्न देशों के विद्वानों द्वारा इतना अधिक लिखा गया है कि यह प्रश्न सुलझने के बदले उलझ गया है। इस समस्या के नहीं सुलझने का एक कारण यह है कि विद्वानों की दृष्टि वस्तुनिष्ठ न होकर आत्म निष्ठ रही है। जिस किसी विद्वान ने इस समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास किया है, उसका ध्यान इसी बात पर रहा है कि उसी का देश आर्यों का आदि स्थान प्रमाणित हो। इस भावना के चलते यह प्रश्न और भी जटिल हो गया है। जितनी दूर में भारत यूरोपीय परिवार की भाषाओं का प्रसार हुआ है उतनी दूर तक आदि स्थान की कल्पना की गई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन स्थानों को मूल स्थान मानने में ऐतिहासिकता का अभाव रहा है। जिस तरह भाषा की उत्पत्ति को लेकर अटकलें लगाई गई हैं, उसी तरह इस प्रश्न को लेकर भी अटकलें आड़े आई हैं। जैसे भाषा की उत्पत्ति का सिद्धांत अनिर्णित है वैसे ही आर्यों के मूल स्थान का भी। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि कोई एक स्थान ऐसा था जहां से आर्य विभिन्न दिशाओं में गए।'

लगभग इसी प्रकार के विचार डॉ० मनमोहन गौतम ने 'सरल भाषा–विज्ञान' में व्यक्त किए हैं। उनका मत है कि मैक्स मूलर के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के मत विशेष सारगर्भित

नहीं है क्योंकि सभी ने अपनी ही मातृभूमि को आर्यों के निवास स्थान का गौरव देना चाहा है और जैसे-तैसे वैसा सिद्ध किया है। बहुतेरे विद्वानों ने प्रायः वृक्षों, नदियों और प्राणियों के नाम मात्र को ही मूल आधार माना है। इतना विकट प्रश्न है कि किस आधार पर किस मत को पुष्ट समझा जाए!

कुछ का कथन है कि भौगोलिक साम्य के आधार पर ही आर्यों का मूल स्थान निश्चित नहीं हो सकता। भौगोलिक परिस्थितियां भी कालांतर में परिवर्तित हो जाती हैं। जहां नदियां थीं, वहां मैदान हो जाते हैं। जहां मैदान थे, वहां समुद्र हो जाते हैं और समुद्र में पहाड़ खड़े हो जाते हैं। कुछ का कथन है कि आर्यों ने जो यात्राएं कीं, इन यात्राओं में भिन्न-भिन्न स्थानों पर ठहरे होंगे। अतः यह हो सकता है कि स्कैंडिनेविया वोल्गा का मुहाना, मैसोपोटामिया आदि बीच के स्थल हैं, जिन्हें लोग आर्यों का मूल स्थान ही मान लेते हैं। लोकमान्य तिलक ने आर्यों के मूल अभिजन के संबंध में यह मत प्रतिपादित किया कि अवेस्ता के वेन्दिदाद में जिन-जिन स्थानों पर आर्यों का मूल स्थान कहा गया है, वे स्थान आर्यों के मूल स्थान न थे। वे आर्यों के उत्तरी ध्रुव से चलने के रास्ते के स्थान थे। इस प्रकार तो मैक्समूलर द्वारा कहा हुआ 'मध्य एशिया' भी उत्तरी ध्रुव से चले हुए आर्यों का एक पड़ाव स्थल है, पर मूल नहीं है। तिलक ने जिस हिमयुग सिद्धांत पर अपना मत स्थिर किया है वह भ्रामक सिद्ध हो चुका है। इस से विद्वान् सहमत नहीं हैं।

फिर आर्यों का मूल निवास स्थल क्या है? इस बात को लेकर अनेक विद्वानों ने शरीर की रचना और आकृति के आधार पर भी इस मंतव्य की पुष्टि की और यह बात सर्वमान्य सी हो गई कि यूरोप, ईरान और भारत के बहुसंख्यक निवासी जाति की दृष्टि से एक हैं और उनके रंग-रूप व भाषा आदि में जो भेद इस समय दिखाई देता है उसका कारण जलवायु की भिन्नता और चिर काल से एक दूसरे से पृथक् रहना है।

जबसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और हाल ही में राखीगढ़ी आदि स्थानों पर खुदाई हुई है तो खुदाई में प्राप्त वस्तुओं की तुलना ऋग्वेद कालीन सभ्यता से की गई है, तब से यह माना जाने लगा है कि आर्यों का मूल अभिजन सप्तसिंधु प्रदेश रहा है और यहीं से वे सारे भारत में और यूरोप आदि देशों में फैले होंगे। यूरोप की भाषाओं में और संस्कृत व प्राचीन ईरानी भाषाओं में जो समानता दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण आर्यों का यह विस्तार ही है। अविनाशचंद्र दास, स्वामी शंकरानंद, नाना पावगी, बाबू संपूर्णानंद जी आदि ने आर्यों का मूल स्थान सप्तसिंधु प्रदेश सिद्ध किया है। उनका कथन है कि वेदों में भी अनेक स्थलों पर 'सप्तसिन्धवः' का प्रयोग हुआ है। अवश्य ही ऐसा प्रदेश आर्यों का मूल अभिजन रहा होगा जहां ७ नदियां बहती हैं। परंतु सप्तसिंधु की सीमाओं के संबंध में विद्वानों में आज भी बड़ा मतभेद है और आज तक भी कोई सर्वसम्मत सिद्धांत स्थिर नहीं हो सका।

यदि सप्तसिन्धु के तत्कालीन भूगोल का स्वरूप निश्चित हो जाए स्यात् आर्यों के मूल निवास की समस्या स्वतः सुलझ जाये। स्वामी विद्यानंद सरस्वती जैसे विद्वान भी उस विचार से सहमत हैं जिसे अविनाशचंद्र दास ने ऋग्वैदिक इण्डिया' में प्रकट किया है। इस मत के अनुसार सप्तसिन्धव के उत्तर में हिमालय था और उसके बाद समुद्र था जो वर्तमान तुर्किस्तान के उत्तरी सिरे से आरंभ होता था पश्चिम में कृष्ण सागर तक जाता था। इस समुद्र के उत्तर में फिर भूमि थी जो उत्तरी ध्रुव प्रदेश तक चली जाती थी। दक्षिण में भी समुद्र था, जहां आज (सन १९४०) राजपूताना प्रदेश है।

यह समुद्र वहाँ तक चला जाता था जहां आज अर्वली पहाड़ है। पश्चिम में यह अरब सागर से मिला हुआ था। पूर्व में भी एक समुद्र था। यह समुद्र हिमालय की तलहटी के नीचे नीचे प्रायः सारे युक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार) को ढकता हुआ आसाम तक चला जाता था। पश्चिम में सुलेमान पहाड़ था। इस ओर भी पहाड़ के नीचे समुद्र की एक पतली गली सी थी। सप्त सिंधु प्रदेश प्रायः वहीं प्रदेश है जिसका नाम आजकल प्राचीन पंजाब कश्मीर है। इसी बात को अविनाशचंद्र दास ने अपनी पुस्तक ऋग्वैदिक इंडिया में इन शब्दों में कहा है- 'कश्मीर का यह सुंदर देश और सप्तसिंधु के मैदान ही आर्य जाति के पालना थे।'

स्वामी विद्यानंद सरस्वती उक्त मत का समर्थन करते हुए भी अपनी पुस्तक 'आर्यों का आदि देश' में लिखते हैं कि वेद के अतिरिक्त अन्य वैदिक साहित्य- ब्राह्मण आदि ग्रंथों में तथा शेष प्राचीन भारतीय वांग्मय- रामायण, महाभारत, पुराण आदि में भी प्रदेशवाचक सप्तसिंधु अथवा सप्तसिंधवः आदि का प्रयोग उपलब्ध नहीं है, जबकि पंजाब के लिए 'पंचनद' पद का प्रयोग महाभारत सभा पर्व ३२/११ में देखा जाता है। इसके स्पष्ट प्रमाण सामने आता है कि प्राचीन भारतीय जन सप्त सिंधु नाम से अभिहित किसी प्रदेश से सर्वथा अपरिचित थे। उन्होंने इन पदों से यदि किसी का विवरण प्रस्तुत किया है तो वे केवल ७ नदियां हैं। देशवाचक इस नाम को प्राचीन साहित्य पर थोंपना सर्वथा असंगत है।'

(आगामी अंकों में जारी)

फील्ड मार्शल का निराला सैनिक : पं0 रुचिराम

❑रामफलसिंह आर्य (9418277714) C-18, तृतीय तल, आनन्द विहार उत्तम नगर, नई दिल्ली-५९

एक कहावत है कि एक जगा हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को जला सकता है। जिसमें स्वयं ही ज्योति नहीं है वह भला दूसरे को क्या प्रकाशित करेगा! ज्योति जितनी प्रचंड होगी, प्रकाश भी उतना ही अधिक होगा, व्यापक होगा। वेद ज्ञान के सूर्य महर्षि दयानंद जी महाराज के संपर्क में जो लोग आए उनके जीवन आलोकित हुए और उन्होंने उस महाज्योति से लौ प्राप्त करके सर्वत्र प्रकाश का विस्तार कर दिया। स्वामी श्रद्धानंद जी, पंडित लेखराम जी, गुरुदत्त जी, स्वामी दर्शनानंद जी आदि प्रकाश के वे स्तंभ हैं जिन्होंने महर्षि जी के पश्चात् यह गुरुतर कार्य अपने बलवान कंधों पर लिया। अनेक आर्य संन्यासियों, उपदेशकों, प्रचारकों, कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने स्थान पर कठोर तपस्या से इस वैदिक धर्म की वेदि में हवि प्रदान की और यह ज्वाला निरंतर फैलती चली गई। हम यहां उन सभी योद्धाओं को हृदय से नमन करते हुए आगे बढ़ते हैं और एक ऐसे योद्धा- जिनके माता-पिता उन्हें सेना में जरनैल बनाना चाहते थे- के चरणों में मस्तक झुका कर उनके शिष्यों की ओर भी चलते हैं। जी हां! आप बिल्कुल ठीक समझे हैं। यद्यपि ये सेना में तो न जा सके, परंतु ऋषि दयानंद की सेना के सेनापति तो अवश्य बने, जिन्हें 'फील्ड मार्शल' के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही लौह-पुरुष की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। त्याग, तप, ब्रह्मचर्य, सेवा और साधना की भट्टी में तपे हुए स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज ही वे व्यक्ति थे। आर्य प्रचारकों को तैयार करके वैदिक धर्म का प्रहरी बनाने हेतु उन्होंने उपदेशक विद्यालय लाहौर में कार्य प्रारंभ किया। यहां पर जिन युवकों ने शिक्षा ग्रहण करके वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य किया, उन्हीं में से एक थे- श्री पंडित रुचि राम जी। इनका जन्म पश्चिमी पंजाब (वर्तमान में पाकिस्तान) के मियांवाली में हुआ था। इनके गुरु स्वामी स्वतंत्रानंद जी ने दीनानगर जिला गुरदासपुर को अपने कार्य क्षेत्र के रूप में चुना। दीनानगर में पंडित जी का आना-जाना लगा रहता था। इसीलिए कुछ लोग यह भी कहने लगे कि वे दीनानगर के रहने वाले थे, परंतु यह सत्य नहीं है।

पंडित रुचिराम जी में कार्य की सूझबूझ, कार्य करने की क्षमता, कष्टों एवं द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति, दूरदर्शिता, किसी भी परिस्थिति में सत्य का पता लगा लेना, विरोधियों के दुर्ग में भी प्रवेश करके उनके सभी भेदों, रहस्यों और गतिविधियों का पता लगा लेना, विनम्रता और सहज ही में किसी को भी अपना बना लेना आदि गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। अपने गुरु के आदेश पर अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देना इनके लिए कुछ बड़ी बात न थी। उनके इन्हीं गुणों ने इनका स्थान स्वामी जी महाराज की दृष्टि में बहुत ऊंचा बना दिया था। गुप्तचर का कार्य करने में इन्हें विशेष योग्यता प्राप्त थी। इस गुण के कारण ही भारतीय सेना में इन्हें विशेष रूप से गुप्तचर के रूप में भी रखा गया था। भारत पाकिस्तान के बंटवारे के समय, कश्मीर में कबायली आक्रमण का समय, बांग्लादेश को पृथक् करते समय व अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर भारत सरकार को इन्होंने अपनी सेवाएं दीं। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी इन्हें सेवामुक्त नहीं करना चाहती थीं परंतु इन्हें रतौंधी आने लगी थी और आयु भी अधिक हो चली थी। अतः उस अवस्था में उन्हें इस शर्त पर सेवानिवृत्त किया गया था कि यह अपने जैसा ही कोई दूसरा गुप्तचर तैयार करके सेना को देंगे।

परिवार के साथ (मध्य) एक दुर्लभ चित्र

हम जिस विचार से प्रभावित और प्रेरित होकर उनके कार्यों का स्मरण करने बैठे हैं वह गुप्तचर की सेवाएं देने का नहीं है, अपितु वह है जो उन्होंने अरब जैसे मुस्लिम देशों में वैदिक धर्म का प्रचार किया। आर्यसमाज में इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। न कोई आर्थिक सहायता, न पासपोर्ट, न कोई दूसरा सहायक! घर वालों को पता नहीं! यह भी नहीं जानते थे कि वे जीवित भी हैं या

नहीं! यदि किसी का संग था तो केवल ईश्वर का, गुरुजी का आशीर्वाद, महर्षि दयानंद जी के प्रति अगाध निष्ठा एवं श्रद्धा। जिस धधकती ज्वाला का आश्रय लेकर वे अरब के देशों में लगातार ७ वर्ष तक भटकते रहे और 'हिज्बुल्लाह' के नाम से अनेकों आर्यसमाजों की स्थापना की। वह ज्वाला कौन सी थी? बलिदानी भावना के अतिरिक्त नि:संदेह और दूसरी कोई नहीं हो सकती। आइए आपको उन्हीं के शब्दों में उनके इस महा दुष्कर कार्य से परिचित करवाते हैं, अवलोकन कीजिए और विचार कीजिए–

'रात्रि के १० बजे का समय था। आकाश में बादल छा रहे थे और कुछ कुछ बूंदें भी पड़ रहीं थीं। मुझे कुछ आवश्यक कार्य था, इसलिए वर्षा का विचार न करते हुए भी अपने मकान से निकलकर दयानंद उपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन में अपने पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। पूज्य आचार्यजी ने कहा कि दु:ख, बीमारी से न मर कर किसी कार्य को करके मरना चाहिए। अरब में वैदिक धर्म का प्रचार करने को कहा और पूछा– क्या अरब में जा कर यह पता लगा सकते हो कि हम किस प्रकार से वहां वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं, परंतु सभा से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। सहसा श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा सुनकर मैं हैरान रह गया कि किस प्रकार अरब जैसे देश में पैदल चलकर बिना किसी सहायता के प्रचार कर सकूंगा! परंतु यह मेरे लिए आचार्य देव की आज्ञा थी, इसलिए मैंने आज्ञा पालन करने के लिए चरणों में सिर झुका दिया। गुरुदेव ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए कहा– परमात्मा पर विश्वास रखो और कल ही चले जाओ। प्रत्येक बंदरगाह से मुझे पत्र लिखते रहना। मैंने उसी समय तैयारी आरंभ कर दी।'

आदरणीय पाठकगण! इस बहुत ही छोटे से वर्णन से आपको क्या कुछ प्रतीत हो रहा है? क्या आपको इसके अंदर दो उदार मनों का दर्शन, दो तड़प वालों का दर्शन, दो ऐसे व्यक्तियों का दर्शन नहीं हो रहा है जो कि वेद के प्रचारार्थ अपना सर्वस्व बलिदान करने को उद्यत हैं! क्या आपको इसमें एक सेनापति और दूसरे उनके निष्ठावान निराले सैनिक का चित्र स्पष्ट नहीं हो रहा है! इधर सेनापति ने आज्ञा दी और उधर सैनिक ने सिर झुकाया। यदि आपको रात के १० बजे कोई व्यक्ति यह कहे कि कल ही आपको एक लंबी यात्रा पर जाना है, तो आप की दशा क्या होगी! लंबी यात्रा तो छोड़िए, यदि अपने किसी कार्य के लिए भी कोई भेजे तो भी आप १० बार विचार करके यह कहेंगे कि श्रीमान जी, आपने तो अचानक कार्यक्रम बना दिया। कम से कम विचार तो करने दीजिए। परंतु यहां तो न तैयारी, न

ही योजना, न कोई परिचय ठिकाना! यह भी नहीं पता कि कहां पर जाना है? कब आना होगा? घर के किसी सदस्य को पता नहीं, बस तुरंत आदेश और तुरंत ही उसका पालन! वाह रे फील्ड मार्शल! वाह रे समर्पित सैनिक! तुम दोनों को बारंबार नमन! हृदय की गहराई से नमन! साथ ही यह भी संभव था कि हो सकता है मृत्यु भी हो जाए! तभी तो फील्ड मार्शल कह रहे थे कि दु:ख बीमारी से मरने की अपेक्षा कुछ कार्य करके मरना अच्छा है। क्या आपको यह वैसी ही स्थिति नहीं लग रही जैसे कि विद्या की समाप्ति पर गुरु विरजानंद की द्वारा महर्षि दयानंद से गुरु दक्षिणा मांगना।

अस्तु, आगे देखिए– 'प्रात: संध्या उपासना आदि से निवृत्त होकर २९ अप्रैल सन १९२९ ईस्वी को लाहौर से कोईटा की ओर चल पड़ा। परंतु वहां से अरब जाने में सफलता प्राप्त न हुई, इसलिए कराची आ गया, और वहां से लंबी यात्रा की तैयारी में कुछ समय के लिए डेरा जमा लिया। कई कारणों से मैंने यह उचित समझा कि दाढ़ी रख लूं। अत: दाढ़ी रखनी आरंभ कर दी। स्वामीजी महाराज को पत्र लिखा कि आज २९ अगस्त १९२९ को कराची से अरब को चल पड़ा हूं।-- मैं वहां से आगे चल दिया और कराची को नमस्कार की। ६ घंटे चलने के पश्चात् मैं हब (?) नदी के तट पर आया। यह गहरी नदी नहीं है। इस पर से ऊंट, बैल और मनुष्य बिना नाव के पार हो जाते हैं। मैं भी नदी लांघ गया। नदी के पास एक छोटा सा गांव और थाना है जो हब नदी के नाम से विख्यात है। यहां पर थानेदार साहब ने पासपोर्ट के लिए पूछा। पासपोर्ट होता तो देता! मुझे वापस कराची जाने की आज्ञा हुई। बड़ी कठिनता से दोपहर की कड़ी धूप में यहां तक पहुंचा था। लौटना इससे भी कठिन दिखाई दिया, इसलिए मैंने थानेदार साहब से कहा कि शाम होने दीजिए, मैं वापस कराची चला जाऊंगा। उन्होंने मुझे सावधान करते हुए कहा कि तुम कराची से पासपोर्ट लेकर ही आना और इसके बाद इस चौकी पर १५ दिन ठहर

जाना। कारण यह था कि सिंध में बीमारी फैली हुई थी, इसलिए सीमा पार करने वालों की डॉक्टरी परीक्षा के लिए १५ दिन तक क्वारंटीन के लिए ठहरना पड़ता था। थानेदार साहब ने यह भी कहा कि इस चौकी से छिपकर भागने का दुस्साहस न करना, क्योंकि यदि यहां से भाग कर दूसरे थाने में पकड़े गए तो गोली से उड़ा दिए जाओगे। यहां से उमरा तक १७ चौकियां हैं। इस पहली चौकी से बिना पासपोर्ट वाले को लौटा दिया जाता है। दूसरे थाने में पकड़े जाने पर गोली मार दी जाती है, क्योंकि उस पर किसी अन्य राष्ट्र का जासूस होने का संदेह किया जाता है।' ये रात होने पर कराची के लिए कुछ दूर वापस जाकर अंधेरे का लाभ उठाकर पुनः अरब की ओर चल पड़े। 'अभी आधा घंटा ही चला था कि २ सिपाही मिल गए। वे शायद मेरे आने की आहट पाकर नींद से जाग गए थे। उन्होंने मुझसे पासपोर्ट मांगा। मेरे पास पासपोर्ट कहां था। हां थैले में किसी मोटर कंपनी का इश्तिहार निकल आया। इश्तिहार में एक तस्वीर भी बनी थी जिसमें एक मनुष्य मोटर के पहियों में हवा भर रहा था। मुझे कुछ और न सूझा तो वही इश्तिहार सिपाहियों के हाथ में दे दिया। बेचारे अनपढ़ तो थे ही! उन्होंने दियासलाई जलाकर भी देखा परंतु पहचान न सके, बोले– तुम्हारा पासपोर्ट तो सही है, परंतु तुमने १५ दिन तक क्वारंटीन नहीं की, इसलिए वापस हब नदी को लौट जाओ। मैं लौट पड़ा। अभी दो चार पग ही चला था कि लौटकर देखा– वे सो गए थे। फिर क्या था! मैंने सड़क छोड़ दी और २ फर्लांग की दूरी का चक्कर काटकर अपनी पुरानी दिशा में चलने लगा। मैं कांटेदार झाड़ियों में से गुजर रहा था कि अंधेरा होने से ठोकर लगी और एक छोटे से गड्ढे में गिर पड़ा। गिरते ही मेरी चायदानी का शब्द हुआ और सिपाही चौंक गए। उन्होंने आपस में कहा कि गोली चला दो, दुश्मन छुप कर भागा जा रहा है। मैंने उनकी आवाज सुन ली और वहीं गड्ढे में पड़ा रहा। उन्होंने वहीं से बैठे हुए अंधेरे में ही गोलियां चलानी शुरू कर दीं। गोलियां मेरे ऊपर से होकर सामने के पेड़ों में लग रही थीं। ये लोग जिधर से आहट पाते हैं, वहीं गोली मारते हैं। जहां मेरी चायदानी गिरी थी, उसके ६ इंच ऊपर से गोली जा रही थी। मैं गड्ढे में होने के कारण बाल–२ बच गया। थोड़ी देर बाद गोलियां चलनी बंद हो गई और वे आपस में कहने लगे– वह आदमी न होगा, कोई शेर होगा। मैंने भी मन में कहा कि अवश्य शेर है। १५ मिनट तक तो वे बातें करते रहे। फिर सो गए। मैं वहां से धीरे –२ सरकता हुआ फिर उसी सड़क पर पहुंच गया। यह सड़क पक्की तो नहीं है पर आने जाने का मार्ग अवश्य है।'

हमने यह वर्णन इसलिए भी करना आवश्यक समझा कि इससे आपको आदरणीय पंडितजी की यात्रा के प्रारंभ में ही आने वाली कठिनाइयों का कुछ अनुमान हो सकेगा। ऐसा नहीं है कि बस केवल इतनी ही कठिनाइयां थीं। यहां तो पग–पग पर कठिनाइयों का अंबार लगा हुआ था। हम विस्तार भय से उनकी पुस्तक 'अरब में मेरे सात साल' के बहुत सारे उद्धरण नहीं दे सकते हैं। हां, एक निवेदन अवश्य कर सकते हैं कि आप इस पुस्तक को अवश्य ही ले आइए और अपने परिवार के साथ बैठ कर पढ़िए। आर्यसमाज के सत्संग में इसे पढ़कर सुनाइए, बच्चों को पढ़ाइए। जब आप इसका अध्ययन करेंगे तो पता चलेगा कि धर्म के धनी इस वीर ने वास्तव में किया क्या है! इस यात्रा में उनके जीवन में अनेक अवसर ऐसे आए हैं जबकि मृत्यु के मुख में जाते–जाते बचे। कहीं पानी न मिलने के कारण, कहीं भोजन की कमी के कारण, कहीं मार्ग की विकटता के कारण, कहीं चींटियों वाला दूध पी जाने के कारण! तनिक विचार तो कीजिए कि अकेले व्यक्ति का रेगिस्तान में अधिक चलने के कारण जोर से शरीर कांप रहा हो, एक पग भी आगे बढ़ाना दुष्कर हो रहा हो, कहीं पर कोई व्यक्ति या सहारा दिखाई नहीं दे रहा हो! फिर भी वह जैसे–तैसे रेंग रेंग कर चल रहा हो! जीवन की आशा ऐसी स्थिति में कितनी देर तक साथ दे सकती है! लगातार कभी १० दिन तक की लंबी पैदल यात्रा में तीन–चार दिन तक पानी की एक बूंद भी नहीं मिल पाए तो क्या दशा हो जाएगी! ऐसे समय में कोई बहुत ऊंचे मनोबल का व्यक्ति ही जीवित रह सकता है, अन्यथा वह या तो पागल हो जाएगा या वैसे ही भटक कर मर जाएगा। ऐसे कई व्यक्तियों को उन्होंने अपनी आंखों के सामने दम तोड़ते देखा है जिनका वर्णन आपको उनकी इस पुस्तक में मिलेगा।

जिस समय उन्होंने अपनी यात्रा की, उस समय अरब में बहुत सी कुरीतियां प्रचलित थीं, जिसको उन्होंने लोगों से छुड़वाया और उन्हें श्रेष्ठ आर्य बनाया। अरब के कई सुल्तानों ने उनका बहुत आदर सत्कार किया और उनकी बहुत सारी सुधार संबंधी बातों को लागू करवाया।

उस समय गुलामों को खरीदने और बेचने की प्रथा वहां पर थी। उनकी स्त्रियों की दशा तो और भी अधिक दयनीय थी। उन्हें बिकने के साथ-साथ भयंकर रूप से शारीरिक शोषण भी सहन करना पड़ता था। पंडित जी के प्रचार से यह कुप्रथा भी समाप्त हुई। उन्हें भाषा की कैसे कठिनाई आई होगी इसका अनुमान भी लगा सकते हैं। वे लिखते हैं कि 'दयानंद उपदेशक विद्यालय में कुछ अरबी पड़ी थी परंतु अरब में वह कुछ विशेष काम न आई। प्रत्येक १०-१२ मील चलने पर भाषा बदल जाती थी। जो-जो भाषा बदलती, उसके कुछ शब्द सीख लेते। ऐसे ही मैंने बद्दुओं में प्रचार करते-२ उनकी भाषा सीख ली। खलीज फारिस के किनारे की अरबी और है तथा नजद की और। ऐसे हजाज, मिश्र फिलिस्तीन, शाम, इराक और यमन की अरबी में भेद मिला।'

कितनी विकट परिस्थितियाँ रही होंगी श्री पंडितजी के सामने! इसका अनुमान उसे ही हो सकता है जो किसी नितांत अपरिचित देश में घूम रहा हो और उसे वहां की भाषा का ज्ञान न हो। उस पर यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है जब वह वहां पर अपने धर्म के प्रचारार्थ गया हो। हम उनके मार्ग की कठिनाई का एक दृश्य दिखला कर आगे बढ़ेंगे। इस समय हमारे लिए यह बहुत कठिन हो रहा है कि हम कौन सी घटना छोड़ें और कौन सी लिखें!
क्या छोड़ूँ क्या बांध चलूँ! मैं सोच रहा तट पर बैठा!!

'-मैं यह भली प्रकार जानता था कि मेरा मार्ग रयाज तक अति भयानक है, क्योंकि बिना काफिले के कोई व्यक्ति मरूभूमि को पार नहीं कर सकता। अलहब्शा से रयाज तक कोई सड़क या मार्ग भी नहीं है। यदि कोई काफिले के साथ जा रहा हो और केवल १० या १५ मिनट सुस्ताने के लिए बैठ जाए और काफिला आंख से ओझल हो जाए तो मालूम नहीं होता कि काफिला किधर गया और मार्ग किधर है। क्योंकि सब ओर रेत ही रेत है। इस पर तनिक हवा चलने से पांव का खोज भी नहीं मिल सकता।

काफिला चलने में अभी २ माह की देरी थी, इसलिए मैं परमात्मा के सहारे चल पड़ा। मैंने लगभग साढे सात सेर जल साथ में लिया और छोटे-छोटे ४५ बिस्कुट और थोड़ी सी चाय ले ली। कपड़ों और कंबल आदि के मिल जाने से कुछ १० सेर बोझ मेरी पीठ पर लद गया। २ घंटे चलने के पश्चात् मैंने एक प्याला पानी गर्म किया और उसमें थोड़ी सी चाय डाली और बिना चीनी मिलाए एक बिस्कुट खाकर वह चाय का पानी पी लिया। इसी प्रकार दोपहर और रात्रि को बिना चीनी वाली चाय और बिस्कुट खाकर निर्वाह किया। बिना चीनी की चाय से प्यास बहुत कम लगती थी। प्रत्येक ३ दिन केवल तीन प्याले चाय और तीन बिस्कुट खाता था। ५ दिन तक तो अच्छी प्रकार चलता रहा, परंतु छठे दिन कुछ शिथिलता आ गई। यह वैसी शिथिलता थी जैसी जुलाब लेने के उपरांत मालूम होती है। चाय और बिस्कुट खाने से शिथिलता भले आ जाए, परंतु २ माह तक मनुष्य मर नहीं सकता। मैं चल रहा था। जहां कहीं मार्ग का भ्रम हो जाता था तो कम्पास सुई से सहायता ले लेता था। मेरा बूट कभी नया तो था ही नहीं, मार्ग में वह बिल्कुल फट गया। यहां एक विशेष प्रकार का विषैला कांटा होता है जो कि चलते समय साधारण पीड़ा करता है परंतु रात्रि में इसका विष पैरों में फैल जाता है और मनुष्य चलने से रह जाता है। परंतु मैंने परमात्मा की अमृतवाणी जो कि वेद हैं, उनका प्रचार करने के उत्साह में इन काँटों का विचार न किया और उसके भरोसे पर धैर्य युक्त चलता ही गया।

मार्ग में एकांत होने से मन एकाग्र हो जाता है और परमात्मा की भक्ति में अधिक मन लगता है। इस प्रकार भक्ति करते हुए ९ दिन हो गए और पानी भी निपट गया। परंतु आज कुछ पक्षी आकाश में विचरते दिखाई दिए जिससे अनुमान हो गया कि जल समीप है। चलते-चलते दसवें दिन मध्याह्न को कुछ बकरियां चरती हुई दिखाई दीं। धीरे-२ कुएँ पर जा पहुंचा। यहां दस बारह कुएँ साथ-२ हैं जिनका जल पृथ्वी से दो गज नीचे है। मैं कुएं पर बैठ गया। थोड़ी देर में बद्दू लोग अपने ऊँट और बकरियों को पानी पिलाने के लिए वहां आए। मुझे उनसे बहुत सा दूध और खजूर मिलीं, जिससे मैंने अपनी १० दिन की बची हुई क्षुधा शांत की।'

मान्य पाठकगण! हमने इस पर कुछ भी टिप्पणी करना अनावश्यक समझा है और सब कुछ आपके विचारों के लिए छोड़ दिया है। बस इतना ही कहना चाहते हैं कि आज के प्रचारकों और उपदेशकों की तुलना करके अवश्य देख लीजिए, सारी स्थिति आपकी समझ में आ जाएगी। न तो हमारी लेखनी में वह शक्ति है कि हम आदरणीय श्री पंडितजी के कार्य का वर्णन कर सकें और न ही कभी उनका ऋण उतार सकते हैं। बस एक ही कार्य हमारे वश में है कि हम श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में शीश झुकाकर उन्हें अपने जीवन का आदर्श बना सकते हैं। धन्य हो श्री पंडितजी! धन्य उनके गुरुवर स्वामी स्वतंत्रानंद जी और धन्य है वह कोख जिसमें ऐसे वीर, तपस्वी और त्यागी का आगमन हुआ। जिन-जिन सुल्तानों ने उन्हें मान-सम्मान दिया, हम उनके भी ऋणी हैं, उन्हें भी नमन करते हैं। इनमें रयाज के जलालातल मलिक अब्दुल अजीज, जलालातल मलिक इबनसऊद, इस्कंदरिया के युवराज समुअल अमीर फार्रुक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

इतिहास-कथा

भारत की बहादुर बेटी की सूझ-बूझ की कहानी

❐कृष्ण चन्द्र गर्ग (पंचकूला) 0172-4010679 kcg831@yahoo.com

यह सत्य-कथा प्रसिद्ध इतिहासकार पुरुषोत्तम नागेश ओक द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत में मुस्लिम सुल्तान' से ली गई है। सन ७१२ में जब मुहम्मद बिन कासिम ने भारत के सिन्ध प्रान्त पर आक्रमण किया था उस समय की यह घटना है। राजा दाहिर की सेना में नौकरी कर रहे अरबी मुसलमान अल्लाफी ने कासिम के लिए एक रात नगर-द्वार खोल दिया जिससे नगर कासिम के कब्जे में आ गया और दाहिर मारा गया। राजा दाहिर के मारे जाने के बाद मुहम्मद बिन कासिम दाहिर की दो अविवाहित युवा पुत्रियों की तलाश में था ताकि वह उन्हें खलीफा के उपभोग के लिए उसके पास भेज सके। ब्रह्मणाबाद की लूट के समय एक महिला ने दो अन्य लड़कियों को राजा दाहिर की पुत्रियां बताकर कासिम के आदमियों को सौंप दिया जबकि राजा दाहिर की दोनों पुत्रियां- सूर्य देवी और परिमल देवी- अपनी माता के साथ जौहर में शहीद हो चुकी थीं।

लूट का सामान और गुलामों के झुण्ड के साथ ये वीर बालाएं राजा दाहिर की पुत्रियों के रूप में दमिश्क पहुँचीं। लड़कियों को खलीफा के सामने पेश किया गया। सर एच० एम० इलियट लिखते हैं कि खलीफा ने दुभाषिए के द्वारा पता किया कि इनमें बड़ी लड़की कौन सी है। फिर खलीफा ने बड़ी लड़की, जिसका नाम जानकी था, को पकड़कर अपनी ओर खींचा। जानकी अपना हाथ छुड़ाकर पीछे हटकर खड़ी हो गई और बोली 'आप लोगों का यह कैसा नियम है कि आपके पास भेजने से पहले कासिम ने तीन रात मुझे अपने पास रखा। क्या नौकरों का जूठन खाने का रिवाज आप लोगों में है?'

इन शब्दों से खलीफा को गहरी चोट लगी। उसने एक आज्ञा-पत्र लिखा कि कासिम जहां कहीं भी हो उसे ताजे कटे सांड के चमड़े में सीकर तुरन्त दामिश्क लाया जाए। उस समय कासिम उदयपुर में था। उसे ताजे कटे सांड के चमड़े में सीकर एक पेटी में बन्द करके दमिश्क खलीफा के पास लाया गया। तब तक कासिम मर चुका था।

अपनी डींग मारने के लिए खलीफा ने जानकी को वहां बुला लिया और कहा कि मेरी आज्ञा का पालन हुआ है। जानकी ने कहा 'निस्सन्देह आपकी आज्ञा का पालन हुआ है, परन्तु आपका दिमाग न्याय और विवेक से खाली है। कासिम ने हमें छूआ तक नहीं था। पर उसने हमारे राजा की हत्या की, हमारे देश को तहस-नहस किया, हमारी १० हजार स्त्रियों को बन्दी बनाकर अपवित्र किया, मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनवाईं। इसलिए मैं उसे दण्डित करना चाहती थी'।

यह सुनकर खलीफा सुन्न रह गया, वह शोक और शर्म में डूब गया। खलीफा ने इन दोनों लड़कियों से सम्बन्ध न बनाने का निर्णय कर लिया और उन्हें घोड़ों की पूंछ से बांध कर दमिश्क की सड़कों पर घसीटकर मार देने की आज्ञा दी।

अलौकिक विवेक के लिए इन वीर बालाओं को देश में सदा स्मरण रखा जाना चाहिए।

आशावाद

आशा मनुष्यों के लिए भगवान का वरदान है।
प्रेरणा है कार्य करने की, विधायी गान है।।
योगदायी शक्ति है व्यक्तित्त्व के उत्थान में।
कर्म में रूचिमय प्रवृत्ति इसी से आसान है।।

बिन प्रवृत्ति के सफलता कार्य में मिलती नहीं।
फूल बनने की प्रवृत्ति बिन कली खिलती नहीं।।
सफलता के सूत्र विकसित ही नहीं होते अगर।
सफलता की कामना की आश मन पलती नहीं।।
प्रेरणा है कार्य करने की, विधायी गान है।।
आस्था की जन्मदात्री, जिन्दगी का प्राण है।

यदि निराशा पंगुता देती सुहानी जिन्दगी को।
या हताशा मौत बनके निगलने आती खुशी को।।
तो सुधा-संजीवनी आशा पिला नव चेतना की।।
मौत के मुख से पुनश्च छीन लाती हर खुशी को।।
अस्तु आशा जिन्दगी, जिन्दादिली का भान है।
हर चुनौती में निडरता की अनोखी शान है।।

संवर पाता नहीं जीवन सुखद आशा के बिना।
सफलता-संकल्प न पाते कभी आशा बिना।।
हर निराशा-तिमिर पथ में दीप आशा का जलाओ।
हौंसला होगा बुलंदित, जोश होगा चौगुना।।
विश्व की समृद्धि का इतिवृत इसी का गान है।
प्रेरणा है कार्य करने की विधायी गान है।।

❐दयाशंकर गोयल, इंदौर

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ

अमृतसर में पौराणिक विद्वानों तथा श्रीशंकराचार्य के साथ नौ घण्टे तक महान् शास्त्रार्थ

लेखक- महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी **प्रस्तुति-** 'अवत्सार' (मिलन आर्य जयपुर)

महामहोपाध्याय पंडित युधिष्ठिर मीमांसक (१९०९-१९९४) संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् तथा वैदिक वाङ्मय के निष्ठावान् समीक्षक थे। उन्होने संस्कृत के प्रचार-प्रसार में अपना अमूल्य योगदान दिया।

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

पौराणिक विद्वानों तथा श्री गोवर्धनपीठाधीश शंकराचार्य व श्री स्वामी करपात्रीजी के साथ अमृतसर में मेरा 16, 17 नवम्बर को साढे छः घण्टे संस्कृत में और अढ़ाई घण्टे हिन्दी में शास्त्रार्थ हुआ। यद्यपि यह शास्त्रार्थ मेरा व्यक्तिगत था, पुनरपि यतः मैं ऋषि दयानन्द प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखता हूँ अतः यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज के साथ हुआ, ऐसा ही माना गया। इस शास्त्रार्थ का उल्लेख भी मुझे ही करना पड़ रहा है और यह मेरे स्वभाव के विपरीत है। पुनरपि इस शास्त्रार्थ में ऐसे कई आज तक अछूते प्रमाण, उनके गम्भीर अर्थ तथा युक्तियाँ दी गई जो आर्य जनता तथा आर्य विद्वानों के लिए भविष्य में कभी लाभप्रद हो सकते हैं। (विशेषकर 17 ता० के मध्याह्नोत्तर के शास्त्रार्थ के समय की)। अतः न चाहते हुए भी मैं इस शास्त्रार्थ की संक्षिप्त रूप रेखा उपस्थित कर रहा हूँ। इसमें एक शब्द भी ऐसा नहीं है, जो उस काल के वर्णन से बाहर का हो। हाँ, भाषान्तर अवश्य है। इसे वेदवाणी में शीघ्र ही प्रकाशित करना था, परन्तु श्री पूज्य गुरुवर के स्वर्गमन के कारण समय पर प्रकाशित नहीं कर सके। - युधिष्ठिर मीमांसक

अमृतसर में 11 नवम्बर से 19 नवम्बर 64 तक अखिल भारतवर्षीय सर्व वेदशाखा सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ था। इसके अध्यक्ष गोवर्धन पीठाधीश (पुरी के शंकराचार्य) थे और श्री करपात्रीजी की अध्यक्षता में हुआ था। लगभग ५० वैदिक तथा अन्य विषयों के विद्वान् सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन की ओर से प्रायः सदा ही कतिपय आर्य विद्वानों को भी निमन्त्रण भेजा जाता है, मार्गव्यय आदि देने की व्यवस्था भी सम्मेलन की ओर से की जाती है।

मुझे भी प्रायः सदा ही निमन्त्रण प्राप्त होता है। चार वर्ष पूर्व देहली के अधिवेशन में मैं सम्मिलित हुआ था और इस बार पुनः सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

देहली के अधिवेशन में अन्तिम दिन अध्यक्ष श्री करपात्रीजी के मध्याह्न में उठ जाने पर किसी पौराणिक वक्ता ने आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के प्रति पर्याप्त अनुचित बातें कहीं। मध्याह्नोत्तर सभा आरम्भ होने पर मैंने श्री करपात्रीजी से उनकी अनुपस्थिति में हुई अनुचित कार्यवाही के विषय में ध्यान आकृष्ट करके श्री स्वामी मेधानन्दजी सरस्वती के द्वारा पौराणिक वक्ता के द्वारा कही गई अनुचित-बातों का उत्तर दिलवा दिया। तत्पश्चात् मैंने ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के वैशिष्टय के सम्बन्ध में विशिष्ट व्याख्यान दिया। उक्त आकस्मिक घटना के अतिरिक्त देहली अधिवेशन की कार्यवाही प्रायः संयत रूप से हुई। विद्वानों के विचार विमर्श चलते रहे।

इस बार श्री शंकराचार्यजी की ओर से निमन्त्रण प्राप्त होने पर मैंने उन्हें एक पत्र लिखा, जिसमें देहली में हुई अनुचित घटना का संकेत किया और लिखा कि जब आप लोग अपने से भिन्न विचार वाले विद्वानों को भी सम्मेलन में निमन्त्रित करते हैं, तब उनकी मान्यताओं का भी ध्यान रखना आप का कर्तव्य है। यदि हमें बुला कर हमारे सम्मुख ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में निरर्गल प्रलाप किया जाए तो उसका एकमात्र यही अभिप्रायः होगा कि हमें बुलाकर अपमानित करने की आप की योजना है। यदि ऐसा है तो हमारा आना व्यर्थ है। मैं तो केवल शास्त्रीय चर्चा में ही भाग लेना चाहता हूँ। इत्यादि।

इस पत्र का जो उत्तर आया उसका पूर्वार्ध प्रायः प्रतिक्रियात्मक बातों से भरा था, परन्तु अन्त में लिखा था कि आप विश्वास रखें ऐसी कोई अनुचित कार्यवाही न होगी। आप आना चाहें तो आ सकते हैं।

यतः मुझे अमृतसर में कुछ अन्य भी कार्य था, अतः मैंने उत्तर दिया कि मैं 15 नवम्बर को मध्याह्नोत्तर पहुँचूंगा। तदनुसार सम्मेलन में 15 नवम्बर को सायं 5 बजे उपस्थित हुआ।

आर्यसमाज की उदासीनता- इस बार न मालूम मेरे पत्र

के कारण अथवा उससे पूर्व आर्यसमाज अमृतसर के उत्सव में आर्यसमाज की ओर से हुए व्याख्यानों से कष्ट से होने के कारण आर्यसमान को नीचा दिखाने की सम्भवतः पूर्व से ही योजना बना रखी थी। मुझे इसका कुछ भी ज्ञान न था।

अमृतसर नगर में आर्यसमाज का अच्छा जोर है। उनके सामने ही इस महान् आयोजन की तैयारी बहुत दिनों से चल रही थी। स्वयं शंकराचार्य महोदय तीन मास से डेरा लगाए बैठे थे, फिर भी अमृतसर आर्यसमाज के नेताओं ने इस सम्भावित आक्रमण के प्रतिरोध के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। 11 या 12 तारीख को सार्वदेशिक सभा को शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों को भेजने के लिए तार देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली गई।

देहली के अधिवेशन में भी यही स्थिति थी। सार्वदेशिक सभा और स्थानीय लगभग ११० समाजों के होते हुए भी किसी ने भी आवश्यकता के समय उचित उत्तर देने के लिए दो चार विद्वानों को बुला कर तैयार नहीं रखा था। उसमें श्री पं० बुद्धदेवजी और श्री स्वामी रामेश्वरानन्दजी कुछ समय के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे। वस्तुतः आर्यसमाज की यह उदासीनता उसके लिए बहुत हानिकारक हो रही है, विपक्षियों के हौसले बहुत बढ़ गए हैं।

शास्त्रार्थ का आरम्भ– 16 नवम्बर को प्रातः मैं १० बजे अधिवेशन में उपस्थित हुआ। मुझे देखकर एक पौराणिक विद्वान् ने (पूर्व योजनानुसार) उठ कर कहा [1] –

'वेद में विज्ञान है या नहीं' इस पर अब शास्त्रार्थ होगा। हमारा पक्ष है कि वेद में विज्ञान नहीं है, वेद केवल यज्ञ कर्म के लिए हैं। इसलिए याज्ञिक अर्थ ही प्रामाणिक है। स्वामी दयानन्द ने आधुनिक विज्ञान को देखकर तदनुसार वेद से विज्ञान निकालने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ– 'आयं गौः पृश्निरक्रमीत्' मन्त्र से पृथिवी का सूर्य के चारों ओर घूमना सिद्ध किया है, जबकि वेद का सिद्धान्त है कि सूर्य घूमता है। जो कोई वेद में विज्ञान मानता है वह स्वामी दयानन्द के अर्थ की प्रामाणिकता सिद्ध करे। [2]

यद्यपि यह मुझे ही लक्षित करके कहा गया था, पुनरपि इस आशा से कि सम्भव है स्थानीय आर्यसामाजिक व्यक्तियों ने किन्हीं अन्य विद्वानों का प्रबन्ध किया हुआ होगा। वे आए होंगे, ऐसा सोच कर मैं मौन रहा। एक मिनट पश्चात् पुनः घोषणा की गई कि जो कोई स्वामी दयानन्द के उपस्थापित मन्त्रार्थ की प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहे करे, अन्यथा यह समझा जाएगा कि स्वामी दयानन्द का उक्त मन्त्रार्थ अशुद्ध है।

इस द्वितीय घोषणा पर मैं उठा। उठ कर कहा कि वेद में विज्ञान है इतना ही नहीं, विज्ञान ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय विज्ञान और यूरोपीय विज्ञान में भूतलाकाश का अन्तर है और यूरोपीय विज्ञान प्रायः परिवर्तित होता रहता है। अतः जो व्यक्ति आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार वेद से विज्ञान निकालने की चेष्टा करता है तो वह वस्तुतः निन्द्य है, परन्तु स्वामी दयानन्द ने वेदार्थ में जिस पृथिवी भ्रमण विज्ञान का प्रतिपादन किया है वह भारतीय विज्ञान है। आर्यभट्ट ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में पृथिवी भ्रमण का विस्तार से प्रतिपादन किया है। ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण में सूर्य के उदय और अस्त होने का निषेध किया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय ऋषि मुनि और आचार्य पृथिवी का भ्रमण तात्विक रूप से मानते थे। [3] जहाँ–जहाँ सूर्य भ्रमण का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है यह स्थूल दृष्टि से किया गया है। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण श्रौत यज्ञ विज्ञान मूलक हैं। वे सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल में होने वाले आधिदैविक यज्ञ के रूपक हैं (इस प्रकरण में कर्मकाण्डगत अग्न्याधान का पार्थिव अग्नि के आधान का रूपकत्व प्राचीन संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों से विस्तार से बताया)। इस कारण जब कर्मकाण्डगत यज्ञ मूलतः आधिदैविक विज्ञान मूलक है अतः वेद के याज्ञिक अर्थ की भी परिसमाप्ति आधिदैविक विज्ञान में होती है। इसलिए वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय विज्ञान ही है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि भारतीय परम्परा में यह बात सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत है कि वेद के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ तीन प्रकार का होता है। याज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक (इसमें स्कन्द स्वामी आदि के अनेक प्रमाण दिए) आधिदैविक अर्थ सारा विज्ञानमूलक ही है। अतः वेद का वैज्ञानिक अर्थ करना वस्तुतः ठीक है।

मेरी इस स्थापना के पश्चात् पूर्वपक्षी पण्डित ने मुख्य विषय छोड़ कर, मन्त्रार्थ तीन प्रकार का होता है या नहीं– इस पर ही बल दिया और पूर्वाह्न का सारा समय इसी विषय में व्यतीत हुआ। अन्त में शंकराचार्य महोदय ने मुझे कहा कि आप तीन प्रकार का अर्थ होता है– बार बार कहते हैं। किसी एक मन्त्र का ही तीन प्रकार का अर्थ करके बतावें। 'अग्निमीळे' का ही करें। यतः यह प्रश्न लगभग एक बजे किया गया था, सभा समाप्त होने को थी, अतः मैंने कहा कि कल प्रातः मैं उक्त मन्त्र के तीनों प्रकार के अर्थ बताऊँगा।[4] तत्पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

17 ता० को प्रातः ठीक १० बजे मैं सम्मेलन में उपस्थित हुआ और खड़े होकर पूर्व प्रतिज्ञानुसार 'अग्निमीळे' मन्त्र का तीन प्रकार का व्याख्यान आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् जनता की ओर से हिन्दी में बोलने के लिए आवाजें आनी शुरू हुई। अध्यक्ष श्री शंकराचार्यजी ने मुझे कहा कि आप के पक्ष के लोग कोलाहल मचा रहे हैं, इन्हें शान्त करें। इसके उत्तर में मैंने कहा कि मेरे पक्ष का यहाँ

कोई नहीं है, कारण मुझे यहाँ के किसी व्यक्ति ने नहीं बुलाया है। आप के निमन्त्रण पर आया हूँ। अतः जो कोई भी कोलाहल कर रहे हैं सब आप के ही पक्ष के हैं।

इस प्रकार अन्त में कार्यवाही हिन्दी में आरम्भ हुई। मैंने यज्ञीय मन्त्रार्थ, जो कि उभयपक्ष सम्मत था- करके उसी के आधार पर आधिदैविक व्याख्या की। आध्यात्मिक व्याख्या अभी पूरी तरह उपस्थित ही नहीं की थी कि अधिक काल हो जाने के बहाने अध्यक्ष महोदय के आदेश से मुझे बैठना पड़ा। इसके पश्चात् पूर्वपक्षी विद्वान् ने पुनः अपना पैंतरा बदला। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद है या नहीं इस पर प्रश्न किया। पूर्वाह्न में सारा वादविवाद इसी विषय में होता रहा।

मैंने इस प्रकरण में कहा कि जिस 'मन्त्रब्राह्मणयो र्वेदनामधेयम्' वचन के अनुसार ब्राह्मण की वेद संज्ञा मानी जाती है वह वचन केवल कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रों में ही मिलता है। ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद के श्रौत सूत्रों में नहीं है। इसका कारण यह है कि ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद की मन्त्र संहिताएँ स्वतन्त्र हैं और इनके ब्राह्मण स्वतन्त्र पृथक् हैं, परन्तु कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं- (शाखाओं) में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का सम्मिश्रण है, अतः प्राचीन परम्परा के अनुसार उनके एक देश मन्त्र की ही वेद संज्ञा प्राप्त थी, ब्राह्मण भाग [5] की नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण संहिता का वेदत्व सिद्ध करने के लिए कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्रकारों को ही ऐसा वचन बनाना पड़ा। इसीलिए इस सूत्र की व्याख्या में हरदत्त और धूर्त स्वामी ने स्पष्ट लिखा है 'कैश्चिन्मन्त्राणामेव वेदत्व माश्रितम्' अर्थात् किन्हीं व्यक्तियों ने मन्त्रों का ही वेदत्व माना है। इससे भी स्पष्ट है कि प्राचीन अनेक आचार्य मन्त्र को ही वेद मानते थे, ब्राह्मण को नहीं। इतना ही नहीं, यदि इस वचन को प्रमाण भी मान लें तब भी आपस्तम्बादि श्रौत सूत्रों के परिभाषा प्रकरण में पठित होने के कारण 'यह पारिभाषिक संज्ञा है' ऐसा मानना पड़ेगा। पारिभाषिक संज्ञा उसी शास्त्र में स्वीकार की जाती है, जिसमें वह बताई गई है। यथा पाणिनि की अ ए ओ वर्णों की गुण संज्ञा पाणिनीय शास्त्र में ही स्वीकार की जाएगी। लोक वा न्याय आदि शास्त्रों में गुण शब्द से अ ए ओ का ग्रहण नहीं होगा। अतः 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' सूत्र से ब्राह्मण ग्रन्थों की सामान्य रूप से वेद संज्ञा नहीं हो सकती। मैंने इस सूत्र पर पूरा विस्तृत विचार 12 वर्ष पूर्व 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् इत्यत्र कश्चिदभिनवो विचारः' पुस्तिका में उपस्थित किया है। श्री करपात्रीजी (वहीं उपस्थित थे) ने उसका उत्तर देने का प्रयत्न तो किया, परन्तु इस बात का उत्तर नहीं दिया कि कृष्ण यजुर्वेदियों को ही ऐसा सूत्र बनाने की क्या आवश्यकता पड़ी, ऋग्वेदादि के श्रौत सूत्रकारों ने क्यों नहीं सूत्र बनाया? कारण स्पष्ट है ऋग्वेदादि में मन्त्र ब्राह्मण का पूर्णतया पार्थक्य है सम्मिश्रण नहीं, अतः उन्हें ऐसा वचन बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इतना ही नहीं, मेरी घोषणा है कि कोई भी पौराणिक विद्वान् इस विवेचना का सही उत्तर आकल्पान्त नहीं दे सकता। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थ के अनेक प्रमाण उद्धृत किये जिनसे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण वेद से पृथक हैं। इस प्रकार 1 बजे यह प्रकरण समाप्त हुआ।

मध्याह्नोत्तर पुनः 3.30 बजे से संस्कृत में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ और अन्त तक संस्कृत में ही होता रहा।

प्रथम मैंने गोपथ ब्राह्मण पृ० २/१० का वचन उपस्थित किया- एवमिमे सर्वे वेदाः निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः (इतना ही उपस्थित किया, शेष अगली बार के लिए छोड़ दिया)। इस वचन में रहस्य अर्थात् आरण्यक, ब्राह्मण और उपनिषदों को वेद से पृथक् करके गिनाया है। यदि ये वेद के अन्तर्गत ही हैं तो पृथक् गिनाने की क्या आवश्यकता? इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदें वेद नहीं हैं। ऐसे प्रमाणों को उपस्थित करने पर पौराणिक विद्वान् कहा करते हैं कि यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के अन्तर्गत हैं तथापि 'ब्राह्मण वसिष्ठ न्याय'[6] से ब्राह्मण ग्रन्थों का वैशिष्ट्य दिखाने के लिए पृथक् निर्देश किया है। पूर्वपक्षी यही बात न कह दे, इसलिए मैंने स्पष्ट कर दिया कि 'ब्राह्मण वसिष्ठ न्याय' वहाँ लगता है जहाँ वक्ता और श्रोता दोनों यह मानते हों कि वसिष्ठ भी ब्राह्मण है। यदि इनमें से एक भी यह न जानता हो कि वसिष्ठ भी ब्राह्मण है तब यह न्याय नहीं लगता। यहाँ भी यह न्याय तभी लग सकता है जब दोनों पक्ष यह स्वीकार करलें कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं यह तो अभी साध्य है। इतना ही नहीं 'सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः' में स शब्द का प्रयोग है। इसका प्रयोग अप्रधान के साथ ही सदा होता है यथा- देवदत्तः सपुत्रः समागतः। (देवदत्त पुत्र सहित आया।) यहाँ देवदत्त का आगमन मुख्य है, पुत्र का गौण। इसलिए इस वचन में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को पृथक् स्वीकार करते हुए (जैसे देवदत्त और उसका पुत्र पृथक् है) वेद से इनकी हीनता अप्रधानता ही व्यक्त की गई है।

इस पर पूर्वपक्षी वक्ता ने यथार्थ उत्तर न देते हुए इधर उधर की बातें करके अपना समय बिताया। तदनन्तर मैंने पुनः कहा कि पूर्व आक्षेपों का कोई समाधान नहीं किया गया, इस के साथ ही उक्त वचन में आगे कहा है-'सेतिहासाः सपुराणाः' क्या इतिहास (महाभारत) और पुराण (आप के मतानुसार हमारे मत में नहीं) जो व्यासकृत हैं, वेद हैं? जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ आदि। क्योंकि इनको भी उसी प्रकार स्मरण

किया है। इतना ही नहीं अपौरुषेय वेद में (आप के मतानुसार) गोपथ में व्यास निर्मित महाभारत वा पुराणों का निर्देश कैसे हुआ?

इस पर पूर्वपक्षी ने कहा कि प्रति द्वापर में व्यासजी पुराणों की रचना करते हैं, अतः यह क्रम प्रवाह से नित्य है यथा सूर्य चन्द्रादि का निर्माण। इस पर मैंने कहा कि आप के पुराणों में यह नहीं लिखा कि प्रति द्वापर व्यासजी पुराणों का प्रवचन करते हैं, बल्कि वेदों का प्रवचन करते हैं, इतना ही लिखा है; अतः आप का उक्त कथन ठीक नहीं। साथ ही मैंने पूछा कि मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् वचन से तो ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती, कोई ऐसा लक्षण बताइये जिस से ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद माने जाएँ।

इस पर पूर्वपक्षी ने कहा कि 'सम्प्रदायाविच्छिन्नत्वे सति अस्मर्यमाणकर्तृत्वं वेदत्वम्' अर्थात् गुरु परम्परा का विच्छेद न होने पर भी जिस ग्रंथ का कर्त्ता स्मृत न हो, वह वेद है। इस से जैसे मन्त्रों का कर्त्ता स्मृत नहीं, वैसे ही ब्राह्मण ग्रंथों का कर्त्ता स्मृत न होने से दोनों समान रूप से वेद हैं।

पूर्वपक्षी के इस लक्षण पर ब्राह्मण ग्रन्थों के लेखकों का नाम उपस्थित किया जा सकता था, परन्तु वैसा न करके मैंने उनके लक्षण में ही क्रमशः दो दोष उपस्थित किए।

(1) आप के मत में जिन ग्रन्थों का गुरु शिष्य सम्प्रदाय नष्ट न हुआ हो वे वेद हैं। हम आपके ग्रन्थों से जानते हैं कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ पहले सस्वर थे, अब शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण को छोड़ कर सब स्वर-रहित हो गए। अतः स्वर के लुप्त होने से स्पष्ट है कि इन ब्राह्मण ग्रन्थों के पठनपाठन में गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश हुआ है। क्योंकि जहाँ जहाँ गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश नहीं हुआ, उन ग्रन्थों में अक्षर, मात्रा, वर्ण, स्वर का एक भी पाठान्तर नहीं मिलता। यथा शाकल संहिता, माध्यन्दिन संहिता, तैत्तिरीय संहिता आदि। जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वरों का लोप हो गया वह लोप बिना सम्प्रदाय नाश के हो नहीं सकता, अतः जिन ब्राह्मणों के स्वरों का नाश हो चुका है अर्थात् सम्प्रदाय भंग हो चुका है वे आपके लक्षणानुसार ही वेद नहीं हो सकते।

इस अभूतपूर्व करारी चोट से सभी पूर्वपक्षी घबरा गए। पूर्वपक्षी विद्वान् ने पराजय से बचने के लिए स्वमत विरुद्ध 'स्वर रहित भी ग्रन्थ वेद है' मत स्वीकार किया। इस पर मैंने श्री शंकराचार्यजी से व्यवस्था मांगी कि क्या ऋग्वेद के मन्त्रों से स्वर हटा दिए जाएँ तो आप उन्हें वेद मानेंगे! उनके पास भी कोई उत्तर नहीं था, अतः उन्होंने स्वीकार किया कि स्वर रहित भी मन्त्र वेद ही है। इस पर मैंने कहा कि आपका यह कहना ठीक नहीं। [7] स्वर रहित ग्रन्थ कदापि वेद नहीं हो सकते क्योंकि मीमांसा के कल्प सूत्राधिकरण में 'कल्पसूत्र वेद हैं या नहीं' पर विचार करते हुए इनके वेदत्व को हटाने के लिए युक्ति दी है- 'असन्निबन्धनत्वात्' इसका टीकाकारों ने अर्थ किया है- स्वररहितत्वात् =स्वररहित होने से कल्पसूत्र वेद नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि स्वर रहित ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते। इसी प्रसंग में मैंने कहा कि आरम्भ से ही उन ब्राह्मणों पर स्वर नहीं था, यह भी आप नहीं कह सकते क्योंकि पहले लौकिक भाषा भी सस्वर थी। पाणिनि का 'विभाषा भाषायाम् (61) सूत्र इसमें प्रमाण है। इस पर श्री शंकराचार्य कहने लगे कि पाणिनि ने स्वर प्रक्रिया में सारे उदाहरण वेद के दिए हैं, लौकिक भाषा में भी स्वर होता तो उसके भी उदाहरण देते। श्री शंकराचार्य के वक्तव्य के उत्तर में मैंने कहा कि पाणिनि ने कोई उदाहरण अपनी अष्टाध्यायी में नहीं दिए। जो उदाहरण मिलते हैं वे काशिका में वामन के हैं और सिद्धान्तकौमुदी में भट्टोजि दीक्षित के। इतना ही नहीं, आप अपना कौमुदी ग्रन्थ भेजिए। मैं पचासों सूत्रों के वे उदाहरण दिखाऊँगा जो वेद के नहीं हैं, लौकिक भाषा के हैं। इस पर श्री शंकराचार्य जी को जो अपने को महावैयाकरण मानते हैं, निरुत्तर होना पड़ा।

(2) इसके पश्चात् पूर्वपक्षी के वेद के लक्षण के दूसरे अंश पर दूसरा दोष उपस्थित किया। सम्प्रदाय के नाश न होने पर भी कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके कर्त्ता का हमें ज्ञान नहीं, परन्तु वे वेद नहीं माने जाते। यथा माध्यन्दिन संहिता का पदपाठ। ऋग्वेद के पदपाठ का कर्त्ता वा प्रक्ता शाकल्य था, सामवेद का गार्ग्य, अथर्व का शौनक, तैत्तिरीय का आत्रेय। ऐसे माध्यन्दिन पदपाठ का कर्त्ता कौन है, यह किसी को ज्ञात नहीं और इसके गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश भी नहीं हुआ। यदि सन्देह हो तो अपने वैदिकों से पूछ लें। अतः आपके लक्षण के अनुसार यह पदपाठ भी अपौरुषेय वेद होगा। परन्तु पदपाठ को अपौरुषेय नित्य नहीं माना जाता। अतः आपका लक्षण उभयथा दोषयुक्त है।

इस पर भी पूर्वपक्षी विद्वान् ने पुनः पराजय से बचने के लिए स्वमत विपरीत पदपाठ को भी नित्य अपौरुषेय वेद स्वीकार किया। इस पर मैंने पुनः मध्यस्थ श्री शंकराचार्यजी से व्यवस्था माँगी। श्री शंकराचार्य और श्री करपात्री जी दोनों ने पदपाठ को भी वेद स्वीकार किया।

इस स्वपक्षविरुद्ध मत के स्वीकार करने पर मैं विशेष रूप से श्री शंकराचार्य और करपात्रीजी से ही सीधा जूझ पड़ा और 'पदपाठ अनित्य हैं, पौरुषेय हैं,' इस बात के सिद्ध करने के लिए एक पर एक प्रमाणों की क्रमशः झड़ी लगा दी। सबसे प्रथम यास्क का 'वनेन वायो न्यधायि चाकन' मन्त्र के व्याख्यान में शाकल्य कृत पदपाठ के

संबंध में लिखा वचन – 'वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्त त्वेषमाख्यालमभविष्यत् असु समाप्तश्चार्थः।' ('वायो' को शाकल्य ने वा यः दो पद मानकर दो टुकड़े किए हैं ऐसा करने से यत् का योग होने से अधायि क्रिया उदात्त होनी चाहिए परन्तु वेद में अनुदात्त है और यत् के निर्देश से मन्त्रार्थ भी पूरा नहीं होता जब तक तत् का अध्याहार न किया जाए) उपस्थित करके कहा कि यास्क शाकल्य कृत पदपाठ को केवल अनित्य ही नहीं मानता, अपितु उसमें दोष भी उपस्थित करता है। इस पर मध्यस्थ ने निरुक्त तथा उक्त मन्त्र का पता पूछा। स्थान निर्देश करने पर कई पण्डित उक्त ग्रन्थ निकाल निकाल कर पन्ने उलटने लगे। लगभग १० मिनट पीछे करपात्रीजी ने इसका समाधान करने की चेष्टा की कि यास्क के चकार का अर्थ बनाना नहीं है, प्रवचन करना है। व्याकरण के अनुसार तो वेद के अनेक पद अशुद्ध कहे जा सकते हैं पर उन्हें कोई अशुद्ध नहीं मानता। अतएव अर्थ की दृष्टि से वायः एक पद ही है परन्तु अध्ययन कृत अदृष्ट के लिए वा यः ऐसा ही परम्परा से स्वीकार किया जाता है इत्यादि।

इस पर मैंने उत्तर दिया कि यदि अर्थ की दृष्टि से वायः दो पद युक्त नहीं तो यास्क का शाकल्य पर दोष देना और उसे पौरुषेय कहना ठीक है। अन्यथा यदि आप पदपाठ को अपौरुषेय नित्य मानते हैं तो कह दीजिए कि यास्क का दोषदर्शन गलत है, मैं बैठ जाता हूँ। इतना ही नहीं अब मैं अन्य प्रमाण देता हूँ जिसमें स्पष्टतया पदपाठ को अनित्य बताया है – कैयट महाभाष्य प्रदीप (२/१/१०९) [अस्पष्ट] में लिखता है– 'संहिताया एव नित्यत्वं पदविच्छेदस्य तु पौरुषेयत्वम्।' अतः पदपाठ अनित्य पौरुषेय हैं यह स्पष्ट है। इस कारण पदपाठ अपौरुषेय वेद नहीं हो सकते।

इस पर भी करपात्रीजी कैयट के वचन पर विचार करके [8] कहने लगे कि वैयाकरण वेद विषय में प्रमाण नहीं। कैयट की अनेक बातों का नागेश ने खण्डन कर दिया है अतः कैयट का वचन प्रमाण नहीं।

इस पर मैंने उत्तर दिया कि यद्यपि नागेश ने कैयट के अनेक मतों का खण्डन किया है पुनरपि इस स्थल पर खण्डन नहीं किया, अतः यह उसे भी स्वीकृत है। इतना ही नहीं, नागेश ने तो महामाष्य 6/3 की टीका में पदपाठों में सम्प्रदाय भ्रंश भी माना है जिसे न आप स्वीकार करते है और न मैं। यह भी ध्यान रहे कि यदि कैयट ने पदपाठों के पौरुषेयत्व का विधान स्वयं अपने रूप में किया होता तब तो उसे कथंचित् अप्रमाण कहा जा सकता था। परन्तु कैयट ने उक्त मत तो महाभाष्यकार पतञ्जलि के 'न लक्षणेन पदकारा अनुकर्त्याः पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्त्यम्' (सूत्रकार को पदकारों का अनुसरण नहीं करना चाहिए पदकारों को सूत्रकारों के लक्षणों का अनुसरण करना चाहिए) वचन की व्याख्या में लिखा है। महाभाष्य के उक्त वचन का यह स्पष्ट अभिप्राय है कि पदपाठ पौरुषेय, अनित्य है। यदि आप महाभाष्यकार पतञ्जलि के वचन को भी वैयाकरण होने मात्र से अप्रमाण कहें तो मैं बैठ जाता हूँ, मुझे ऐसी अवस्था में कुछ नहीं कहना।

इस पर पुनः कुछ समय परस्पर विचार विनिमय करके श्री करपात्रीजी बोले कि महाभाष्यकार का उक्त वचन प्रौढिवादमात्र (एक देशी जबरदस्ती का उत्तर) है, सिद्धान्तरूप नहीं। महाभाष्यकार कई स्थानों पर प्रौढिवाद से उत्तर देते हैं वे उत्तर प्रामाणिक नहीं माने जाते।

इस वक्तव्य पर मैंने कहा कि यह सत्य है कि महाभाष्य में प्रौढिवाद से अनेक उत्तर दिए गए हैं परन्तु कौन सा उत्तर प्रौढिवाद से दिया गया है इसके परिज्ञान के लिए दो कसौटियाँ हैं। पहली– जिस उत्तर के विपरीत अन्यत्र लेख मिले उन परस्पर विरोधी उत्तरों में एक प्रौढिवाद का उत्तर होगा दूसरा सिद्धान्तरूप का। दूसरी– प्रौढिवाद का उत्तर एक स्थान पर ही मिलेगा उसका पुनः पुनः निर्देश न होगा। तदनुसार पदपाठ विषयक उक्त मन्तव्य का विरोधी वचन सम्पूर्ण महाभाष्य में उपलब्ध नहीं, अतः यह प्रौढ़िवाद से कहा गया है यह कहना असत्य है। इतना ही नहीं यह वचन महाभाष्य में अध्याय 6 और 8 में दो स्थानों पर और भी आया है। इसलिए अनेक स्थानों में समानरूप से कहा गया उत्तर प्रौढ़िवाद का नहीं माना जा सकता। इतने पर भी यदि वैयाकरण होने से महाभाष्यकार के वचन से सन्तोष न हो तो मैं वैदिक विद्वान का मत उपस्थित करता हूँ– भर्तृहरि महाभाष्य की टीका में पृष्ठ 268 पर लिखता है– 'एवं च कृत्वा वृको मासकृत इत्यवग्रहभेदोऽपि भवति। चन्द्रमसि प्रवृत्तो मासशब्दो अवगृह्यते वृके मासकृत् (वृको मासकृत मन्त्र में चन्द्रमा अर्थ में मास ऽकृत् ऐसा एक पद मानकर अवग्रह किया जाता है और वृक अर्थ में मा सकृत् दो पद माने जाते हैं)। यदि यह कहा जाए कि भर्तृहरि का वचन भी वैयाकरण होने से अप्रमाण है तो यह अशुद्ध है। भर्तृहरि वैयाकरण होते हुए भी परम वैदिक है। उसकी वैदिकता को गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान जैसे जैन आचार्य भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। वर्धमान लिखता है– 'तत्र भवतां वेदविदा मलंकारभूतेन भर्तृहरिणा।' यास्क भी वैदिक है, अतः यास्क, भर्तृहरि, पतञ्जलि, कैयट आदि के उद्धृत वचनों से स्पष्ट है कि पदपाठ ग्रन्थ अनित्य पौरुषेय हैं, ये पदपाठ ग्रन्थ अपौरुषेय वेद नहीं हो सकते। इस प्रकार आपका वेद लक्षण उभयथा दोष दुष्ट होने से त्याज्य है।

इसके पश्चात् साढे पाँच बजे का समय हो जाने के

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

विद्या अविद्या

प्रस्तुति विष्णु शर्मा

विद्या और अविद्या एक दूसरे की विरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक ही हैं।

वैदिक सिद्धांतों का सरल एवं सरस विवेचन करना ही उपनिषदों का लक्ष्य रहा है। उपनिषद् वेदान्त के नाम से भी जाने जाते हैं। कथाओं और आख्यायिकाओं द्वारा उपनिषद आत्मविद्या का प्रतिपादन किया करते हैं। उपनिषद् मनुष्य का जीवन लक्ष्य निर्धारित करने में सहायक हैं। उनमें से ही एक है विद्या-अविद्या का औचित्यपूर्ण तथा सांगोपांग विवेचन। विद्या और अविद्या को समझने से जीवन का सार तत्त्व काफी हद तक जाना जा सकता है। अतः यहां उपनिषदों में प्रतिपादित विद्या-अविद्या के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा रहा है-

विद्या-अविद्या- सामान्य रूप से लोग विद्या और अविद्या का अभिप्रायः ज्ञान और अज्ञान से लेते हैं, जो कि सर्वथा अनुचित है। विद्या और अविद्या एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक ही हैं। दोनों ही का सम्यक् ज्ञान मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है। इन दोनों में से किसी एक का ही सेवन हानिकारक होता है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।। (ईशो० ९)

अर्थात् जो अविद्या की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं; और जो केवल विद्या में ही रत रहते हैं वे मानो उससे भी अधिक घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। अतः स्पष्ट हुआ कि यद्यपि विद्या-अविद्या एक दूसरे के विरोधी नहीं है तथापि एक दूसरे से भिन्न अवश्य हैं, इसलिए एक को विद्या तथा दूसरे को अविद्या कहा गया। व्याकरणिक दृष्टि से अविद्या में जो नञ् तत्पुरुष समास का प्रयोग हुआ है वह अभाव अर्थ में न होकर भिन्नता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतः दोनों के अर्थ एक दूसरे से भिन्न हैं। मुण्डकोपनिषद् में इन दोनों विद्याओं को परा और अपरा विद्या के नाम से पुकारा गया है।

प्रश्न उठता है कि एक दूसरे की पूरक होते हुए भी ये एक दूसरे से भिन्न क्यों हैं? इन दोनों की परिभाषा, लक्षण आदि क्या हैं? ये दोनों किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हैं और भिन्न होते हुए भी इन दोनों में सामंजस्य किस प्रकार का है? अतएव विद्या अविद्या का संक्षेप में विचार किया जाता है जो कि प्रसंगवश अपेक्षित है-

विद्या तथा उसका महत्व- विद्या से तात्पर्य है वह विद्या, जिससे ब्रह्मज्ञान होता है-

'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।' (मुण्डक० १/५)

अतएव विद्या का अर्थ हुआ ब्रह्मविद्या जो ब्रह्मप्राप्ति में सहायक होती है। जहां जाकर फिर नहीं लौटना होता। जहां का प्रकाश भौतिक विज्ञान या तत्वों पर आश्रित नहीं है अपितु स्वयं से ही प्रकाशित है।-

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। (मुंडक० द्वि खण्ड,- १०)

'वहां न सूर्य प्रकाशित होता है और न चन्द्रमा और तारे। वहां यह विद्युत् भी नहीं चमकती, तब यह पार्थिव अग्नि भी कैसे जल पायेगी? जो कुछ भी चमकता है, वह उसकी आभा से अनुभासित होता है, यह सम्पूर्ण विश्व उसी के प्रकाश से प्रकाशित एवं भासित हो रहा है।'

मुण्डकोपनिषद् का यही भाव कठोपनिषद् और श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी वर्णित है। श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी बात का समर्थन करते हुए कहती है-

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। 15-6||

भावार्थ : उस परम-धाम को न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा प्रकाशित करता है और न ही अग्नि प्रकाशित करती है, जहाँ पहुँचकर कोई भी मनुष्य जन्ममरण में (एक निश्चित अवधि तक) नहीं आता है वही मेरा परमधाम है।।

उपनिषदों के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य पशुओं की भांति केवल जीविका-उपार्जन नहीं है, अपितु उस ब्रह्म को जानना ही मनुष्य जीवन का एकमात्र परम लक्ष्य है। इसलिए वे लोग जो केवल अविद्या में रत हैं, दृष्टि होने पर भी अंधों के समान जीवन व्यतीत करते हुए कष्ट सहते हैं-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।
(मुंडक० १/१/८)

भावार्थ : अविद्याग्रस्त रहते हुए भी अपने को बड़ा बुद्धिमान् तथा बड़ा पण्डित समझने वाले वे मूढ़ लोग अन्धे के नेतृत्व

में चलने वाले अन्धों के समान भटकते और अनेक कष्ट सहन करते हैं। और इसी कारण वे अविद्या के भ्रमजाल में फंसकर कर्मफल पर पूर्ण रूप से आसक्त हो ब्रह्म रूपी तत्त्व ज्ञान को नहीं समझ पाते और अविद्या द्वारा ही 'हम कृतार्थ हो गए हैं' ऐसा समझकर इस लोक में तो दु:ख पाते ही हैं और कर्मफल के क्षीण हो जाने पर परलोक के सुख से भी वंचित हो जाते हैं–

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।।
मुंडक०– १/२/९)

इस प्रकार उपनिषदों द्वारा विद्या का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, जो ब्रह्म को जानने में सहायक है। ब्रह्म इस विद्या का साध्य है और विद्या ब्रह्मप्राप्ति में साधन रूप है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य ब्रह्म का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐसा कोई स्थान नहीं है जो ब्रह्म से रहित हो अपितु वह तो ऐसी ज्योति के समान है जिसमें धुंआ नहीं है, विकार नहीं है। वही भूत और भविष्य का स्वामी है। वह कल था, वह आज भी है और वह सदा ही रहने वाला है।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।। एतद् वै तत् 13

इसी प्रकार के भाव ईशोपनिषद ने भी व्यक्त किए हैं–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। (ईश० मंगलाचरण)

अतः उपनिषदों के अनुसार कुछ भी उस ब्रह्म की परिधि से बाहर नहीं है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ में भी अत्यंत सूक्ष्म रूप से ठीक उसी तरह से विद्यमान है जैसे जल में लवण। जल में लवण दृष्टिगोचर तो नहीं होता किंतु उसका अस्तित्व उसमें अवश्य होता है। इस प्रकार वह सर्वव्यापी ब्रह्म नहीं चलते हुए भी चलता है। वह पास होकर दूर और दूर रहते हुए भी पास रहता है। वही ब्रह्म बाहर भी होता है और वही अंदर भी–

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।। (ईश० ५)

इस प्रकार वह एकमात्र ब्रह्म ही है जो सर्वशक्तिमान है। वही सबका बीज और आदिकारण है। प्रलय तथा निर्माण उसके बाएं हाथ का खेल है–

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। (गीता १०/३९)
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। (गीता ७/६)

इस प्रकार यह तो निश्चित हुआ कि ब्रह्म क्या है, कौन है, किंतु उसको जानने का लाभ क्या है, उसे जानने का क्या फल होता है? तो इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यमाचार्य कहते हैं–

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मृत्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते। (कठ– २/३/१३)

भावार्थ : – ब्रह्मविद्या को जानने से मनुष्य के हृदय में जो कामनाएं है वे सब छूट जाती हैं और तब वह 'मृत्यः' अमृत हो जाता है और इसी जन्म में ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

मुण्डकोपनिषद में ऋषि अंगिरा भी ब्रह्मविद्या का फल बताते हुए कहते हैं–

यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित् कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।। (मुंडक –३/२/९)

भावार्थ :– जो उस 'परम ब्रह्म' को जान जाता है वह स्वयं 'ब्रह्म' बन जाता है, उसके कुल में 'ब्रह्म' को न जानने वाला कोई भी नहीं रहता। वह शोक से पार हो जाता है, वह पापों से तर जाता है, वह हृदय की ग्रंथियों से मुक्त होकर अमर हो जाता है।

इस प्रकार अब तक विद्या अविद्या के प्रकरण के अंतर्गत विद्या को जाना किंतु यह विश्लेषण यहीं आकर समाप्त नहीं होता। विद्या को ठीक ठीक समझने के लिए अविद्या के स्वरूप से भी परिचित होना अति आवश्यक है अतः अविद्या का भी कथन किया जा रहा है–

अविद्या और उसका महत्व– यह ठीक है कि विद्या ही मनुष्य का परम लक्ष्य है किंतु उसके लिए जीवन का सुचारू रूप से चलना भी जरूरी हैं जोकि अविद्या या अपरा विद्या से ही संभव है, क्योंकि ब्रह्मविद्या को छोड़कर हर कर्म का परिगणन अविद्या में हो जाता है चाहे वह आजीविका से सम्बंधित कार्य हो अथवा धर्म या अध्यात्म से संबंधित कोई यज्ञ अनुष्ठान आदि जैसा कि मुण्डकोपनिषद की इस मंत्र में उद्धृत है–

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति।। (१/५)

भावार्थ :– अपरा विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष की गणना की जाती है। इस प्रकार वेद वेदाङ्ग, यज्ञ–तप–दान–अध्ययन आदि से जुड़े हुए कर्म भी अपरा विद्या की कोटि में ही आ जाते हैं। *(ब्रह्म–विद्या का मूल भी वेद ही है, जैसा कि इसी लेख में आगे स्पष्ट है। पुनश्च 'उपनिषद् रहस्य' कार श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का वक्तव्य भी द्रष्टव्य है 'यदि ब्रह्म (परा) विद्या भी वेदमूलक है तो वेदों को अपरा क्यों कहा गया है? इसका उत्तर स्पष्ट है कि वेद केवल परा विद्या का पुस्तक नहीं है। वेद में परा (ब्रह्म) और अपरा (लोक) दोनों प्रकार*

की विद्याओं का समावेश है। दोनों शिक्षाओं के सम्मिलित होन से उन्हें केवल परा (ब्रह्म) विद्या का पुस्तक नहीं कह सकते। इसलिये उनकी गणना केवल परा विद्या में नहीं की गई है।' –उपोद्घात पृष्ठ २५) अतः अविद्या या अपरा विद्या त्याज्य नहीं, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने के लिए ही इस लोक में भेजा है और कर्म बिना तो किसी की जीवन यात्रा सम्भव ही नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। (ईश० २)

भावार्थ :- इस संसार में कर्म करते हुए ही मनुष्य को सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिये। हे मानव! तेरे लिए इस प्रकार का ही विधान है, इससे भिन्न किसी और प्रकार का नहीं है, इस प्रकार कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करने से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होता।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।। (गीता ३/८)

और तो और सृष्टि की आधारभूत विद्या भी अविद्या ही है। प्रश्नोपनिषद में वर्णन मिलता है कि जब प्रजापति को सृष्टि करने की इच्छा हुई तो उसने घोर तप करके रयि तथा मिथुन को उत्पन्न किया जिन्होंने इस सृष्टिक्रम को बढ़ाने में योगदान दिया–

प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणञ्चेति एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।। (प्रश्नोपनिषद- ३)

तप के अतिरिक्त यज्ञ को भी अपरा विद्या में गिना गया है जिसके विषय में शतपथ ब्राह्मण कहता है- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कम' अर्थात् यज्ञ करना श्रेष्ठ है। गीता में तो यज्ञ को सृष्टि का आधार ही बता दिया गया है –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टा पुरोवाचप्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। (गीता-३/१०)

भावार्थ : सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञ सहित देवताओं और मनुष्यों को रचकर उनसे कहा कि तुम लोग इस यज्ञ द्वारा सुख-समृद्धि को प्राप्त करो और यह यज्ञ तुम लोगों की इष्ट (परमात्मा) संबन्धित कामना की पूर्ति करेगा।

यज्ञ और तप की ही भाँति दान को अविद्या की श्रेणी में रखा गया है और बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रजापति ने मनुष्यों को दान करने का स्पष्ट आदेश दिया है–

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षर मुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति।।2।। (5, ब्राह्मण 2)

दान, यज्ञ और तप के विषय में योगेश्वर कृष्ण का भी कथन है कि तीनों कार्य अवश्य करने चाहिएँ।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।। (गीता-१८/५)

निष्कर्ष- उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परा और अपरा विद्याएं न तो एक दूसरे से हीन है और न ही परस्पर विरोधी, अपितु ये दोनों ही विद्याएं एक दूसरे के मार्ग में बाधक नहीं बल्कि सहायक ही हैं। इस कथन की पुष्टि के निम्नलिखित प्रमाण दिए जा सकते हैं–

१- वेद एकमात्र विद्या के स्रोत हैं जिन्हें समझने के लिए वेदांगों का अध्ययन अनिवार्य है। इस प्रकार अविद्या विद्या का मार्ग प्रशस्त करती है।

२- श्रुति में मुमुक्षु साधक को स्पष्ट आदेश है कि वह ब्रह्मविद्या के समिधाएं हाथ में लेकर ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाएं। यहां प्रश्न उठता है कि समिधाएं ही लेकर गुरु के पास क्यों जाना चाहिए? ये समिधाएं भोजन पकाने हेतु तो नहीं हो सकती। निस्संदेह ये समिधाएं यज्ञ के लिए ही उपयोग में लाईं जाने के लिए होती हैं। यज्ञ अपरा या अविद्या की श्रेणी में आता है जिससे सिद्ध है कि अविद्या विद्या की सहायक है।

३- गुरु के लिए आदेश है कि जो साधक कर्मशील और स्वयं एकर्षि नामक अग्नि में हवन करने वाला हो इसके साथ साथ जिसने शिरोव्रत धारण किया है, वह उसी को ब्रह्मविद्या का उपदेश करे। यहां स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रह्मविद्या का साधक बनने के लिए कर्मशील व यजनशील होना नितांत आवश्यक है। उपनिषद् के इन वचनों से सिद्ध है कि अविद्या को ग्रहण किये बिना कोई विद्या का अधिकारी नहीं बन सकता।

४- ईशोपनिषद् के अनुसार विद्या एवं अविद्या दोनों परम पुरुषार्थ की प्राप्ति में सहायक हैं क्योंकि दोनों की एक साथ उपासना करने वाला उपासक कर्म एवं ज्ञान इन दोनों को पार करके देवत्व को प्राप्त होता है–

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। (ईश०११)

५- केनोपनिषद् में कहा गया है कि अविद्या की क्रियाओं से विद्या को बल मिलता है तो विद्या से मोक्ष प्राप्ति होती है–

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।

६-मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा बलहीनों को नहीं मिलता-'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' इसलिए बलप्राप्ति के लिये अविद्या का सेवन आवश्यक है।

७- बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि जो विद्या अविद्या इन दोनों से खाली है। जिन्होंने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों को स्पर्श भी नहीं किया, वे तो मरकर आनन्द से शून्य और गाढ़ अंधकार से आवृत्त लोकों में जा गिरते हैं। अतएव विद्या और अविद्या एक दूसरे की विरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक ही हैं।

मौसम के अनुसार भोजन

-प्रकाश चंद गंगराडे

यह आवश्यक है कि हमें आहार ग्रहण करते समय वातावरण, आयु तथा प्रकृति का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कैंसर, दमा, हृदय रोग, आर्थ्राइटिस जैसे रोगों का संबंध आपके सेवन किए गए आहार से है। विशेषज्ञों का कहना है कि पाचन संबंधी अनेक सामान्य से लगने वाले असंतुलन उपर्युक्त भयंकर रोगों को जन्म देते हैं। नवीनतम वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि पुरुषों में सभी प्रकार के कैंसर का ६० प्रतिशत तथा स्त्रियों में सभी प्रकार के कैंसर के ४१ प्रतिशत का संबंध असंतुलित आहार से है। कुछ वैज्ञानिक आहार में विभिन्न पदार्थों का अनुपात, गुण तथा आहार करने का तरीका कैंसर होने का कारण मानते हैं। मांस के बारे में कहा जाता है कि इसमें अनेक हार्मोन, रंग तथा रसायन पाए जाते हैं, जिनमें कैंसर पैदा करने की क्षमता होती है।

हमारे स्वास्थ्य में गिरावट और रोग का एक ही कारण मुख्य रूप से माना गया है, वह है-गलत आहार। हम अपने शरीर की प्रकृति को जाने बिना जो भी खाते हैं वह सबका सब हितकर नहीं होता। जब हमें मालूम है कि हमारी पित्त प्रकृति है तो हमें उत्तेजक वस्तुओं के सेवन से बचना चाहिए। जिनकी प्रकृति वात प्रधान है, उन्हें गैस पैदा करने वाली चीजों से परहेज करना चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि हमें आहार ग्रहण करते समय वातावरण, आयु तथा प्रकृति का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। इसके विपरीत सेवन किया गया आहार 'विरुद्ध आहार' कहलाता है जो रोग उत्पन्न करने का कारण बनता है।

यों तो दैनिक जीवन में हम गेहूं, चावल और दाल का प्रयोग करते ही हैं। दूध, दही तथा घी से बने विभिन्न पदार्थों के सेवन से शरीर का रूखापन दूर हो जाता है, नेत्रों में ज्योति आती है, धातुओं का निर्माण होता है तथा हृदय की क्रिया ठीक प्रकार से चलती है। सब्जियों के सेवन से आमाशय व पक्वाशय में पाचन की क्रिया ठीक प्रकार से होकर कब्जियत पैदा नहीं होती। मल समय पर व साफ होता है। फलों का सेवन मांसपेशियों को सुदृढ़ करता है और पुरुषार्थ में वृद्धिकारक होता है। लेकिन ये सब लाभ तभी मिल सकते हैं, जब आहार ऋतुओं के अनुसार ही किया जाए। समय-समय पर उसमें परिवर्तन करते रहें।

शीत ऋतु में-इस ऋतु में जठराग्नि बहुत प्रबल होती है अतः पौष्टिक आहार सेवन करने से आसानी से पच जाता है और शरीर पुष्ट व बलवान बनता है।

सामान्य धान्यों के अलावा सेव, पपीता, चीकू, अंजीर, खजूर, मूंगफली, केला, आंवला, शाकरकंद, गाजर, कच्चे चने, काजू, बादाम, पिस्ते, गुड़, घी, दूध, गन्ने का रस आदि खाद्य चीजों का अधिक सेवन करना चाहिए।

कटु, तिक्त व कषाय रस युक्त एवं वातवर्द्धक पदार्थ, रूखे व अति शीतल पदार्थ खानपान में न लें। भूख को मारना, खाली पेट रहना समय पर भोजन न करना इस ऋतु में हानिकारक होता है। अतः समय पर केला, चने, मूंगफली, दूध जो मिले सेवन कर लें।

गर्मी में : इस ऋतु में गेहूं, दलिया, चावल, मूंग, अरहर, जौ से बने विभिन्न खाद्यान्नों के अलावा हल्के, पतले, ठंडे और चिकनाई युक्त पदार्थों का विशेष रूप से सेवन करना चाहिए। फलों में मीठे खरबूज, मीठे आम, ककड़ी, केले, अंगूर, मौसंबी, संतरे का सेवन लाभकारी है। कच्चे आम का पना व सत्तू का सेवन विशेष गुणकारी है।

लहसुन, सरसों, उड़द, खट्टा दही, शराब, बैंगन, शहद का सेवन न करें। बासी भोजन, तेज मिर्च मसाले युक्त भोज्य सामग्री खाने से बचें। इन दिनों ज्यादा समय तक भूखे प्यासे न रहें। रात्रि में भारी गरिष्ठ भोजन न करें।

बरसात में : इस ऋतु में हल्के व सुपाच्य भोजन का सेवन करें। सूखा भूना हुआ चना नमक खटाई मिलाकर खाना, मूंग की पतली दाल, पुराना मधु, आम, जामुन व तले हुए पदार्थ खाना लाभकारी है।

नदी का गंदा जल, घोला हुआ सत्तू, पतला छाछ, दिन में सोना, धूप का सेवन, अधिक परिश्रम वाले कार्य इस ऋतु में छोड़ देने चाहिए।

ऋतु के अनुरुप आप जो भी खाद्य पदार्थ सेवन करें उसे अच्छी तरह चबाकर खाएं। बीच-बीच में थोड़ा पानी भी पीएं ताकि पाचन ठीक प्रकार से हो सके। इसके अलावा यदि आप प्रातःकाल उठकर एक गिलास खाली पेट पानी पीने, दोपहर के भोजन के बाद छाछ का सेवन करने और रात्रि में सोने से पूर्व दूध पीने का नियम बना लें तो इससे न केवल आपकी आयु बढ़ेगी बल्कि रोगों से भी मुक्त रहेंगे।

जानते हो!

❐आस्था

भारत के प्रथम

राष्ट्रपति– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद
उपराष्ट्रपति – डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
अंतरिक्ष यात्री – स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा
आई० सी० एस० – सत्येन्द्रनाथ टैगोर
नोबेल पुरस्कार विजेता– रवीन्द्र नाथ टैगोर
महिला प्रधानमंत्री – श्रीमती इन्दिरा गांधी
महिला राज्यपाल – श्रीमती सरोजनी नायडू (उ० प्र०)
महिला आई० पी० एस०– किरण बेदी
केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में महिला मंत्री– राजकुमारी अमृतकौर
महिला मुख्यमंत्री– सुचेता कृपलानी (उ० प्र०)
माऊंट एवरेस्ट विजेता महिला पर्वतारोही– बछेन्द्री पाल
महिला पायलट – फ्लाईंग आफिसर सुषमा मुखोपाध्याय
महिला आई० ए० एस० – अन्ना जार्ज (मल्होत्रा)
दूरदर्शन समाचार वाचिका– प्रतिमा पुरी

☺☺☺हास्यम्☺☺☺

❖पति (पुत्र की बुद्धि की प्रशंसा करते हुये)–मैं कहता हूँ–इसे मेरा दिमाग मिला है, तभी इतना होशियार है।
पत्नी–हाँ आप ही का मिला है–मेरा तो अभी मेरे पास है।

❖'डाक्टर साहब, कभी–कभी सोते समय इतनी जोर से खर्राटे आते हैं कि मैं अपनी आवाज से ही जाग जाता हूँ।
'तो मेरी राय में तुम दूसरे कमरे में सोया करो।' डाक्टर ने सलाह दी।

❖एक शराबी–कल मैं अमरीका का राष्ट्रपति बन जाऊँगा।
दूसरा शराबी–'अभी मैंने इस्तीफा ही कहाँ दिया है?'

❖रमेश शहर जा रहा था। सतीश ने उसे एक जरूरी पत्र देते हुए कहा–'शहर जा रहे हो, लैटरबॉक्स में डाल देना।'
चार दिन बाद दोनों तो सतीश ने पूछा–'पत्र डाल दिया?
रमेश ने गुस्से में पत्र निकालकर देते हुए कहा– 'लो, ज्यादा जल्दी है तो किसी ओर से डलवा लेना।'

❖डाक्टर–(मरीज से) दवाई जल्दी असर करेगी, तुम अपने मन में यह सोचो कि तुम ठीक होते जा रहे हो।
मरीज 'जी अच्छा' कहकर चलने लगा तो डाक्टर ने कहा–मेरी फीस तो देते जाओ?
रोगी–जी, आप भी अपने मन में सोच लीजिए कि आपको फीस मिल गई है।

❖'यह मेरा सगा भाई है, इससे मेरा बहुत दूर का रिश्ता है।' विवेक ने आयुष का परिचय देते हुए अध्यापक से कहा।
'सगा भाई–और दूर का रिश्ता?' अध्यापक ने पूछा।
'जी इसके और मेरे बीच में तीन भाई–बहन और भी हैं।' विवेक ने मासूमियत से कहा।

बाल वाटिका

प्रहेलिका:

❖ऊपर से हरा, अन्दर से लाल।
मीठा रस भरा, मोटी खाल।।

❖धर्म की खातिर, बेटे दिए चार।
दो युद्ध लड़कर मरे, दो चुने दीवार।

❖एक अनोखा पहरेदार।
लटका रहता घर के द्वार।

❖दोनों कान पकड़कर, नाक पर होता सवार।
देखने में मदद करूँ, नाम बतलाओ यार।।

❖दिन में हँसे, रात को रोए।
जितना रोए उतना खोए

❖गोल गोल पर गेंद नहीं, लाल लाल पर फूल नहीं।
आता हूं खाने के काम सभी जानते मेरा नाम।।

❖एक फूल है काले रंग का, सर पर सदासुहाय।
वर्षा धूप में खिल जाता, छाया में मुरझाए।।

❖छोटे हैं ये छुटकदास, कपड़े पहनें सौ पचास।।

❖छोटा सा फकीर उसके पेट में लकीर

तरबूज, गुरुगोविन्दसिंह, ताला, ऐनक, मोमबत्ती, गुलाबजामुन, छतरी, प्याज, गेहूँ का दाना

विचार–कणिका:

❐प्रतिभा

❖बिना पुस्तकों के ईश्वर मौन है, न्याय निद्रित है, प्राकृतिक विज्ञान स्तब्ध है, दर्शन लंगड़ा है, शब्द गूंगे और सभी वस्तुएँ पूर्ण अंधकार में हैं। –बार्थालिन

❖बच्चे राष्ट्र की महान विभूति हैं, जिन पर देश का भविष्य टिका रहता है। –महामना मालवीय

❖किसी कार्य का आरम्भ उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। –प्लेटो

❖हंसमुख स्वभाव दीर्घायु का सर्वोत्तम साधन है। –बेकन

❖लकड़ी के ऊपर रंग और रोगन लगाने से वह कीड़ा नहीं मरता जो उसके भीतर बैठा हुआ उसका कलेजा खाए जाता है। –मुंशी प्रेमचन्द

❖भाग्योदय भरपूर अवसर मिलने से नहीं, बल्कि मिले हुए अवसरों का भरपूर लाभ उठाने से होता है।

❖सफलता और आराम कभी भी एक साथ नहीं रह सकते।

देश की खुशहाली का रहस्य

प्रस्तुति : संजय चुघ

जापान के टोक्यो शहर के निकट एक कस्बा अपनी खुशहाली के लिए प्रसिद्ध था। एक बार एक व्यक्ति उस कसबे की खुशहाली का कारण जानने के लिए सुबह-सुबह वहाँ पहुंचा। कस्बे में घुसते ही उसे एक कॉफी शॉप दिखायी दी। उसने मन ही मन सोचा कि मैं यहाँ बैठ कर चुप-चाप लोगों को देखता हूँ। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए शॉप के अंदर लगी एक कुर्सी पर जा कर बैठ गया।

कॉफी शॉप शहर के रेस्टोरेंट्स की तरह ही थी, पर वहाँ उसे लोगों का व्यवहार कुछ अजीब लगा।

एक आदमी शॉप में आया और उसने दो कॉफी के पैसे देते हुए कहा- 'दो कप कॉफी, एक मेरे लिए और एक उस दीवार पर।'

व्यक्ति दीवार की तरफ देखने लगा, लेकिन उसे वहाँ कोई नजर नहीं आया, पर फिर भी उस आदमी को कॉफी देने के बाद वेटर दीवार के पास गया और उस पर कागज का एक टुकड़ा चिपका दिया, जिस पर 'एक कप कॉफी' लिखा था।

व्यक्ति समझ नहीं पाया कि आखिर माजरा क्या है। उसने सोचा कि कुछ देर और बैठता हूँ, और समझने की कोशिश करता हूँ।

थोड़ी देर बाद एक गरीब मजदूर वहाँ आया, उसके कपड़े फटे पुराने थे पर फिर भी वह पूरे आत्म-विश्वास के साथ शॉप में घुसा और आराम से एक कुर्सी पर बैठ गया।

व्यक्ति सोच रहा था कि एक मजदूर के लिए कॉफी पर इतने पैसे बर्बाद करना कोई समझदारी नहीं है। तभी वेटर मजदूर के पास आर्डर लेने पंहुचा।

'सर, आपका आर्डर प्लीज!' वेटर बोला।

'दीवार से एक कप कॉफी' मजदूर ने जवाब दिया।

वेटर ने मजदूर से बिना पैसे लिए एक कप कॉफी दी और दीवार पर लगे ढेर सारे कागज के टुकड़ों में से 'एक कप काफी' लिखा एक टुकड़ा निकाल कर डस्टबिन में फेंक दिया।

व्यक्ति को अब सारी बात समझ आ गयी थी। कसबे के लोगों का जरूरतमंदों के प्रति यह रवैया देखकर वह भाव-विभोर हो गया। उसे लगा- सचमुच लोगों ने मदद का कितना अच्छा तरीका निकाला है- जहां एक गरीब मजदूर भी बिना अपना आत्मसम्मान कम किये एक अच्छी सी कॉफी शॉप में खाने-पीने का आनंद ले सकता है।

दूसरे की मदद करने के बाद जो खुशी मिलती है वह बड़ी से बड़ी कीमत देकर भी खरीदी नहीं जा सकती।

मनुष्य की कीमत

एक बार लोहे की दुकान में काम कर रहे एक बालक ने अचानक ही अपने पिता से पूछा- 'पिताजी इस दुनिया में मनुष्य की क्या कीमत होती है?'

पिता एक छोटे से बच्चे से ऐसा गंभीर सवाल सुन हैरान रह गया। फिर बोला- 'बेटे, एक मनुष्य की कीमत आंकना बहुत मुश्किल है, वह तो अनमोल है।'

बालक- क्या सभी उतने ही कीमती और महत्त्वपूर्ण हैं?

पिताजी- हाँ बेटे।

बालक कुछ समझा नहीं। उसने फिर सवाल किया- तो फिर इस दुनिया में कोई गरीब तो कोई अमीर क्यों है? किसी की कम रिस्पेक्ट तो किसी की ज्यादा क्यों है?

सवाल सुनकर पिता कुछ देर शांत रहा। फिर बालक से स्टोर रूम में पड़ा एक लोहे का रॉड लाने को कहा।

रॉड लाने पर पिता ने पूछा- इसकी क्या कीमत होगी?

बालक- २०० रूपये।

पिता- अगर मैं इसके बहुत से छोटे-छोटे कील बना दूँ तो इसकी क्या कीमत हो जायेगी?

बालक कुछ देर सोच कर बोला- तब तो यह और महंगा बिकेगा। लगभग १००० रूपये का।

पिता- अगर मैं इससे घड़ी के बहुत सारे स्प्रिंग बना दूँ तो?

बालक कुछ देर गणना करता रहा और फिर एकदम से उत्साहित होकर बोला- 'तब तो इसकी कीमत बहुत ज्यादा हो जायेगी।'

फिर पिता उसे समझाते हुए बोले- 'ठीक इसी तरह मनुष्य की कीमत इसमें नहीं है कि अभी वह क्या है, बल्कि इसमें है कि वह खुद को क्या बना सकता है।'

बालक अपने पिता की बात समझ चुका था।

दोस्तो, अक्सर हम अपनी सही कीमत आंकने में गलती कर देते हैं। हमारे जीवन में कई बार स्थितियाँ अच्छी नहीं होती हैं पर इससे हमारी कीमत कम नहीं होती। हमें हमेशा अपने आप में सुधार करते रहना चाहिये और अपनी सही कीमत प्राप्त करने की दिशा में बढ़ते रहना चाहिये।

भजनावली

ईश्वर ने जो भी जीव जंतु धरती पर बनाये हैं, वे मनुष्य को कुछ न कुछ सन्देश देते हैं, जिनसे सीखकर मनुष्य सफल जीवन जी सकता है, ऐसे ही कुछ जन्तुओं द्वारा दिये गए संदेश को मैंने कविता के रूप में पिरोया है। आशा है इन मूक शिक्षकों की सीख को ध्यान में रखा जाएगा।

१–जीव–जन्तुओं से शिक्षा

जीव जगत में घूम रहे जो, ले लो उनसे अच्छाई
देते हैं सन्देश मनुज को, समझे जो इनको भाई।। टेक।।

शेर कहे जब करो काम तुम, लगा दो ताकत तब पूरी,
बनी योजना जो भी तेरी नहीं छोड़ना उसे अधूरी,
गधा बताए तीन खासियत, अपना लो तुम दस्तूरी
थक जाओ पर लगे रहो तुम, धीरज ही है कस्तूरी
तज दो विचलित होना चाहे कैसी भी हो कठिनाई।।१।।
देते हैं सन्देश मनुज को समझे जो इनको भाई।।

वफा नाथ से, साहस, धीरज कुत्ता हमें सिखाता है
काग बताए चतुर बनो तुम, बगुला ध्यान लगाता है
गाय, टिटहरी हमें बताएँ मैय्या का क्या नाता है
सावधान रहकर के खल से, खरहा ज्यों बच जाता है
वैसे ही तुम रहना चौकस, आफत सर पर जब छाई
देते हैं सन्देश मनुज को समझे जो इनको भाई।। 2।।

सुबह सवेरे जल्दी उठना जीवन जिओ बिना डरके,
मुर्गा सिखलाता है तुमको धन को बांटो सम करके,
बिल्ली की एक बात मान लो सुख है चिंता तजकर के,
तोते की तरह रटन लगाकर नाम जपो तुम ईश्वर के
कोयल की तरह मीठी मीठी बजा चलो तुम शहनाई
देते हैं सन्देश मनुज को समझे जो इनको भाई।।३।।

बाज कहे अपने बच्चों को, संकट का रंग दिखलाओ
पग पग पर संघर्ष मिलेंगे, उनसे मत तुम घबराओ।
मधुमक्खी कहती है तुमको एक बनो और भिड़ जाओ
कामयाब जो होना है तो, चींटी जैसे बन जाओ
चढ़ना, गिरना गिरकर चढ़ना **प्रज्जवल** ले लो अंगड़ाई
देते हैं सन्देश मनुज को, समझे जो इनको भाई।।४।।

कवि–
प्रज्जवल आर्य
ग्राम– ताल्हापुर
जिला– सहारनपुर,
उत्तर प्रदेश

२–कोरोना

तर्ज– आओ बच्चो तुम्हे दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की

उल्टे रस्ते जाओगे जो बनकर दैत्य वेश में
इसी तरह आएंगी महामारी सारे देश में
लौटो वेद की ओर, लौटो वेद की ओर।।

मछली, अंडा, मुर्गा, बकरा, चूहे, बिल्ली खाओगे
इसी लिए तो कोरोना को, केवल तुम ही भाओगे
ऊर्जा मांस से कई गुना तुम, शाकाहार से पाओगे
लघु भारी इन बीमारी से सदा सदा बच जाओगे
खाओगे जो दाल, टमाटर भर जाओ आवेश में
इसी तरह आएंगी, महामारी सारे देश में
लौटो वेद की ओर, लौटो वेद की ओर

हवा के अंदर बुरे विषाणु उड़ते विचरण करते हैं,
उन अनदेखे अरिदल से, हम रोगी होकर मरते हैं,
हवन, भवन में पावन बू से, कोना कोना भरते हैं
हवन की बू से बुरे विषाणु, थर थर थर थर डरते हैं
बचना है तो हवन करो, कहे राजा आदेश में
इसी तरह आएंगी, महामारी सारे देश में।
लौटो वेद की ओर, लौटो वेद की ओर

जैसा कर्म करेंगे भाई, ऐसा ही फल मिल जाये
योग को निशदिन अपनाकर के, तेरा जीवन खिल जाये
ओ३म् जाप से संकट भारी, कर्मठता से झिल जाए
कोरोना का कालगाल, सचेत सुई से सिल जाए
प्रज्जवल तेरे सभी सगे हैं, रहे न सबसे द्वेष में
इसी तरह आएंगी, महामारी सारे देश में।
लौटो वेद की ओर, लौटो वेद की ओर––

यज्ञ, योग व आयुर्वेद को अपनाकर ही भारत पुनः विश्व गुरु बन सकता है - स्वामी आर्यवेश

यज्ञ, योग व आयुर्वेद की त्रिवेणी को अपनाकर ही भारत पुनः विश्व गुरु बन सकता है- यह संदेश स्वामी आर्यवेश जी ने स्वामी इंद्रवेश विद्यापीठ टिटौली में आयोजित यज्ञ के अवसर पर दिया। स्वामीजी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आह्वान पर पूरे देश में आयोजित घर-घर यज्ञ के कार्यक्रम के तहत आयोजित यज्ञ में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि यज्ञ, योग व आयुर्वेद की त्रिवेणी को देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को पुरजोर तरीके से लागू करवाना चाहिए। उन्होंने कहा कि यज्ञ व योग के धार्मिक व कर्म काण्डीय स्वरूप की जगह उसके वैज्ञानिक स्वरूप को दुनिया के सामने लेकर जाना चाहिए। यदि हम ऐसा कर पाए तो यह देश पुनः विश्व गुरु बन जाएगा। उन्होंने बताया कि आज पूरी दुनिया में १० लाख से ज्यादा आर्यजनों ने कोरोना मुक्ति के लिए यज्ञ किया। इस अवसर पर स्वास्थ्य कर्मियों, पुलिस, सफाई कर्मचारियों, मीडिया कर्मियों व सेना के जवानों के प्रति आभार व्यक्त किया गया। उन्होंने सरकार से अपील भी की कि देश में अलग-२ स्थानों पर फंसे हुए मजदूरों की घर वापसी के उचित व सार्थक प्रयास व प्रबंध किए जाएं। उन्होंने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं से भी कहा कि वे भी इस दौर में जरूरतमंद लोगों की मदद करें तथा सरकार द्वारा निर्देशित लोकडाउन के नियमों का सख्ती से खुद भी पालन करते रहें। वरिष्ठ संन्यासी स्वामी चन्द्रवेश ने कहा कि कोरोना ने हमें हमारी प्राचीन वैदिक पद्धति की ओर लौटने के लिए मजबूर कर दिया है। आज यदि हम अपनी जीवनशैली पहले वाली बना लेंगे तो बहुत सी बीमारियों से स्वतः बच जाएंगे। यज्ञ में सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद के प्रदेशाध्यक्ष दीक्षेन्द्र आर्य, महामंत्री ऋषिराज शास्त्री, संगठनमंत्री विवेकानंद शास्त्री ने भाग लिया। स्वामीजी ने कहा कि आज पूरे विश्व के आर्यसमाजों के कार्यकर्ताओं ने कोरोना वॉरियर्स के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की कामना की। साथ ही वायरस को खत्म करने के लिए वैक्सीन के निर्माण के लिए किए जा रहे प्रयासों की सफलता की कामना भी की। (प्रेषक दीक्षेन्द्र आर्य ७०१५२५९७१३)

फील्ड मार्शल का (पृष्ठ १८ का शेष)

अपनी अरब की प्रचार यात्रा करते हुए पूज्य पंडितजी अनेक स्थानों पर गए और ७ साल के पश्चात् १५ फरवरी सन १९३६ को भारत वापस लौट आए। वे मनकरोज बंदरगाह, जो कि काठियावाड़ में पड़ती है, पर नाव से उतरे और अजमेर, दिल्ली, फिरोजपुर तक रेल यात्रा करते हुए २६ फरवरी सन १९३६ को लाहौर में पहुंचकर अपने आचार्य स्वामी स्वतंत्रानंदजी के चरणों में प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे अपने गांव जंडावाला जि० मियांवाली में अपने घर पहुंचे व अपने परिवार से मिले। परिवार को इनके किसी समाचार का पता न था। उन्हें उनके जीवित होने का भी पता न था कि अचानक अपने घर पर आए तो सभी चकित रह गए।

आर्यो! आपकी ही संस्था के ये अद्भुत साहसी, पराक्रमी और तपस्वी ऐसे अद्वितीय वीर हैं जो अपनी समानता नहीं रखते। उन्होंने अपने प्राणों को जलाकर वैदिक धर्म की ज्योति जलाई थी। यदि कोई इनके स्थान पर दोबारा अरब में प्रचार के लिए जाता तो यह निश्चित बात है कि अरब में भी आर्यसमाज का केंद्र होता और आज जो अनेक समस्याओं से पूरे विश्व को दो-चार होना पड़ रहा है- कहीं आतंकवाद, कहीं जिहाद, कहीं अलगाववाद- यह सब संभव था इतना न होता। अरबवासियों को उन्होंने बड़े सरल, उदार चित्त और सत्यप्रेमी बताया है। वास्तव में पहले यह भी आर्य ही थे जो कि अपना धर्म भूलकर मोहम्मद साहब की ओर चल पड़े। अरब के मुसलमानों को उन्होंने भारत के मुसलमानों की अपेक्षा उदार और सहनशील लिखा है। भूमिका तो पहले पंडित रुचिराम जी वहां पर बना ही आए थे, बस देर तो किसी दूसरे उनके स्तर के उपदेशक के जाने की थी; परंतु यह न केवल हमारा अपितु मानव जाति का ही दुर्भाग्य कहा जाएगा कि आर्य समाज में कोई दूसरा पंडित रुचिराम उत्पन्न ही ना हो सका।

उसके उपरांत ये सेना में चले गए और वहीं गुप्तचर विभाग में कार्य करते रहे। इनका कार्य ही ऐसा था कि ये अपना परिचय किसी को देते नहीं थे। आर्यसमाज में भी बहुत कम लोग ही इन्हें पहचानते थे। अरब में जाने से पूर्व उन्होंने स्वामी स्वतंत्रानंद जी के कहने से ही स्वामी श्रद्धानंद जी के हत्यारे अब्दुल रशीद को फांसी दिलवाने के लिए जो गुप्तचरी का कार्य किया, वह कैसी अद्भुत घटना है, जो केवल इन्हीं का काम था। यदि पंडितजी उस कार्य को न करते तो यह निश्चित था कि हत्यारे को फांसी न होती। उस घटना को हम पृथक् से लिखेंगे। अभी तो केवल 'फील्ड मार्शल' के इस अद्वितीय सैनिक- प्रेरणा के तेजपुंज के इस महान कार्य से परिचित करवाना ही हमारा मुख्य उद्देश्य था। पाठकों से हम यही कहना चाहते हैं कि इसे एक कहानी समझ कर पढ़ने की भूल न करें, अपितु आपके और हमारे लिए यह एक संदेश है-- एक मार्ग है-- एक प्रकाश का स्तंभ है जो युगों-युगों तक हमारे लिए पथप्रदर्शन करता रहेगा। परिस्थिति चाहे कैसी भी क्यों न हो। कठिनाइयां कितनी भी क्यों न हों, यदि मन में उत्साह है तो कोई बाधा मार्ग अवरुद्ध न कर सकेगी।। ❐❐❐

शास्त्रार्थ (पृष्ठ २४ का शेष)

कारण श्री शंकराचार्यजी ने अपने भाषण में– 'यह शास्त्रार्थ जय पराजय के लिए नहीं किया गया, ज्ञानवर्धन के लिए किया गया है अतः यहाँ पराजय का कोई प्रश्न नहीं, यहाँ तो वाद कथा हुई है। श्री मीमांसकजी मेरे पूर्वाश्रम के मित्रों में से हैं। इनकी योग्यता मैं जानता हूँ। बड़ी विद्वत्ता से इन्होंने अपने पक्ष का पोषण किया है। अब अतिकाल होने से यह सभा समाप्त की जाती है। अगले दिन ज्योतिष सम्मेलन होगा --------' आदि कह कर लीपापोती करके सभा विसर्जित की।

श्री शंकराचार्यजी के उक्त भाषण के मध्य में ही जब आपने वादकथा का निर्देश किया तब मैंने बीच में टोकते हुए उनसे कहा कि इस वादविवाद को वादकथा कहना शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध है। आपने दो बार अस्थान में मेरे लिए निग्रह स्थान का प्रयोग किया था अर्थात् आप निग्रह स्थान में आ गए। उस समय मैंने जानबूझ कर कि कहीं यह कथा न्याय शास्त्र में न चली जाए, कुछ नहीं कहा। परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिए कि वाद कथा में प्रतिपक्षी के लिए निग्रह स्थान का प्रयोग नहीं होता। यतः आपने निग्रह स्थान का प्रयोग किया, अतः आपके वचनानुसार ही यह कथा वाद कथा न होकर जल्प वा वितण्डा कथा रही, यह प्रमाणित होता है।

विशेष– जब से पदपाठों के अनित्यत्व का प्रकरण चला, उस अन्तिम डेढ घण्टे में पौराणिक 3–4 विद्वान् बराबर अपनी पुस्तकों में से मेरे दिए गए उद्धरण निकाल निकाल कर श्री शंकराचार्यजी तथा श्री करपात्रीजी के हाथों में देते रहे। वे दोनों प्रतिवार 5–१० मिनट विचार करके उत्तर देते थे। इससे संस्कृत से अनभिज्ञ पौराणिक जनता पर भी आर्यसमाज का भारी प्रभाव पड़ा। प्रायः अनेक व्यक्ति कहते सुने गए कि आर्यसमाज का पण्डित बहुत तगड़ा रहा। वह अकेला मुँह जबानी 2–3 मिनट ही बोलता था और उसका उत्तर देने के लिए कई कई पण्डित मिलकर पुस्तकों के पन्ने उलटते थे और दोनों (श्री शंकराचार्य तथा करपात्रीजी) पुस्तकें देखकर और 5–7 मिनट सोच कर उत्तर देते थे।

इस प्रकार इस शास्त्रार्थ का पौराणिक जनता पर तो भारी प्रभाव पड़ा ही, किन्तु अमृतसर की आर्यजनता भी कहने लगी कि आपने आर्यसमाज की लाज रख ली। मैंने आर्यसमाजियों के उक्त कथन पर कहा कि आप लोग इस भारी तैयारी को देखते हुए भी सोते रहे। मैं तो सम्मेलन द्वारा निमन्त्रित होकर आया था, आप लोगों ने क्या किया? यह उदासीनता आर्यसमाज को ले डूबेगी।

यह भी ज्ञात रहे कि सारे विवाद प्रकरण में कथन प्रतिकथन को टेप रिकार्ड मशीन से रिकार्ड किया गया परन्तु अनेक अवसरों पर मशीन बन्द होती थी (मेरे पास ही मशीन थी अतः मैं देखता रहता था)। जहाँ तक मुझे ज्ञात है– अन्तिम दृश्य का तो रिकार्ड किया ही नहीं गया। इस लेख में एक दो स्थान पर श्री करपात्रीजी और श्री शंकराचार्यजी के नामों में परिवर्तन हो सकता है, क्योंकि प्रायः अन्तिम समय में दोनों ही महानुभाव उत्तर देने में प्रवृत्त हो जाते थे।

[पाद टिप्पणी 1- यह ध्यान में रहे कि सम्मेलन की सारी कार्यवाही प्रायः संस्कृत में ही हुई। अतः शास्त्रार्थ भी संस्कृत में ही हुआ।]

[पाद टिप्पणी 2– यह ध्यान रहे कि पूर्वपक्षी ने मुख्य विषय का प्रतिपादन न करके ऋषि दयानन्द के मन्त्रार्थ पर ही सीधी आक्षेप मुझे शास्त्रार्थ में घसीटने के लिए ही किया था।]

[पाद टिप्पणी 3– इस विषय में जो महानुभाव विस्तार से जानना चाहें वे ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य के अस्मद् आचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत भाष्यविवरण अ 3 मं० 6 पृष्ठ 249–256 तक देखें।]

[पाद टिप्पणी 4– कार्यवश मुझे मध्याह्नोत्तर उपस्थित नहीं होना था।]

[पाद टिप्पणी 5– यहाँ ब्राह्मण भाग में 'भाग' शब्द का प्रयोग कृष्ण यजुर्वेद की संहिता की दृष्टि से किया है। आर्यसमाज के अनेक विद्वान् प्रायः मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग शब्दों का प्रयोग करते हैं, वह अशुद्ध है क्योंकि यदि मन्त्र भाग भी वेद है ऐसा कहा जाएगा तो उसका दूसरा भाग भी वेद माना जाएगा। जो वृक्षत्व वृक्ष की कुछ शाखाओं में है वह उसकी दूसरी शाखाओं तथा मूल वा तने में भी है। 'अतः मन्त्रभाग वेद है' ऐसा स्वीकार करने पर ब्राह्मण भाग को भी न्याय की दृष्टि से भी आपाततः वेद मानना पड़ जाएगा। अतः मन्त्र और ब्राह्मण के साथ भाग शब्द का भूल कर भी व्यवहार नहीं करना चाहिए।]

[पाद टिप्पणी 6– ब्राह्मणा आयाताः वसिष्ठोऽप्यायातः। यहाँ वसिष्ठ के ब्राह्मण होने से 'ब्राह्माणाः आयाताः' कहने से कार्य चल सकता था फिर भी वसिष्ठ का पृथक् निर्देश इसलिए किया कि वह अन्य ब्राह्मणों से विशिष्ठ है, प्रधान है।]

[पाद टिप्पणी 7– यहाँ से आगे प्रायः मध्यस्थ स्वरूप श्री शंकराचार्यजी से ही वादविवाद होता रहा।]

[पाद टिप्पणी 8– कैयट के वचन का पूरा पता देने पर भी जब शीघ्रता से पूर्वपक्षियों से न निकाला जा सका तो महाभाष्य मेरे पास भेजा, मैंने उक्त पृष्ठ निकाल कर उन्हें दिया।]

माँ की महिमा

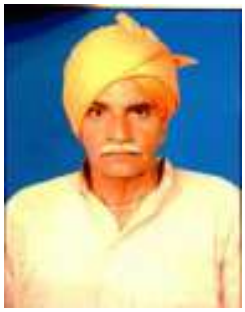

❑ भलेराम आर्य, सांघी वाले 9416972879

आजकल माता पिता बच्चों से माँ न कहलवा कर मम्मी और पिता को डैडी कहलवाना ज्यादा पसन्द करते हैं। आजकल केवल गाय का बछड़ा ही अपनी माँ को माँ कहता है। उसकी माँ जैसे ही उसकी आवाज सुनती है तो दौड़कर उसके पास आती है और उसे अपनी जीभ से चाटकर शांत कर देती है। हमें माँ तब याद आती है जब कहीं चोट लगती है या बीमार होने पर अधिक दर्द होता है। तब हमारे मुंह से निकलता है- हाय माँ मर गया। माँ के महत्त्व को जानने के लिए कवि की इस कविता का अवलोकन कीजिये-

लेती नहीं दवाई माँ- जोड़े पाई पाई माँ।।
दु:ख थे पर्वत राई माँ, हारी नहीं लड़ाई माँ।।
इस दुनिया में सब मैले किस दुनिया से आई माँ।
दुनिया के सब रिश्ते ठण्डे गरमा गरम रजाई माँ।।
बाबू जी थे सख्त मगर, माखन और मलाई माँ।।
बाबू जी तनखा लाए, लेकिन बरकत लाई माँ।।
बाबू जी बीमार पड़े- साथ साथ मुरझाई माँ।।
बाबू जी के पांव दबा सब तीर्थ हो आई माँ।।
नाम सभी है गुड़ से मीठे- मांजी, मैया, माई, माँ।।
सभी साड़ियाँ छीज गई थीं, मगर नहीं कह पाई माँ।।
जब भी कोई रिश्ता उधड़े करती है तुरपाई माँ।।
घर के चूल्हे मत बांटो रे देती रही दुहाई माँ।।
माँ से घर, घर लगता है- घर में घुली समाई माँ।।
बेटे की कुर्सी ऊँची, पर उसकी ऊँचाई माँ।।
बेटी रहे ससुराल में खुश- सब जेवर दे आई माँ।।
दर्द बड़ा या छोटा हो, याद हमेशा आई माँ।।
रोती है पर छुप छुप कर बड़े सबर की जाई माँ।।
लड़ते लड़ते सहते सहते- रह गई एक तिहाई माँ।।
रहते शांत सभी माँ से, है घर की शहनाई माँ।।
सभी पराये हो जाते हैं, होती नहीं पराई माँ।।

पाठकों से निवेदन

१ एक स्थान पर १० या अधिक सदस्य होने पर किसी एक सदस्य के पास पैकेट रजिस्टर्ड डाक से भेजते हैं। इसका रजिस्टरी खर्च हम वहन करते हैं। रजिस्टरी और पैकिंग सहित यह लगभग ३००/-(एक वर्ष) होता है। एक सदस्य का रजिस्टरी खर्च वहन करना हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आपको अपनी प्रति साधारण डाक से नहीं मिल रही है और आप अपनी एक प्रति रजिस्टरी से मंगाना चाहते हैं तो अपने सदस्यता शुल्क में एक वर्ष के लिए अतिरिक्त ३००/- जोड़कर भेजें। हम चाहेंगे कि आप दस वर्षीय सदस्यता शुल्क भेजने की बजाय अपने आसपास के कम से कम दस सदस्यों का वार्षिक शुल्क भेजें। आपको एक वर्ष तक हर मास १० प्रतियाँ रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त होंगीं। यह सहयोग कुछ पाठक कर भी रहे हैं।

२ आप अपनी प्रति ई मेल से भी पीडीएफ में मंगा सकते हैं। उसके लिए कोई अतिरिक्त शुल्क देय नहीं है।

कोरोना की विभीषिका के संदर्भ में हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे संगठित और एकजुट होकर सरकार और प्रशासन के निर्देशों का सख्ती से पालन करें। घर में प्रतिदिन यज्ञ करें। बच्चों को संध्या सिखाएँ। किसी आर्ष ग्रंथ का और नैतिक शिक्षा की पुस्तकों का स्वाध्याय बच्चों के साथ अवश्य करें।

कोरोना के लॉकडाऊन के मध्य हम पाठकों को इण्टरनेट के द्वारा ही शांतिधर्मी भेज पायेंगे। आप अपने ईमेल या व्हाट्स एप्प पर मंगा सकते हैं।

साथ ही इस अवधि का शुल्क भी पाठकों से नहीं लिया जायेगा।

ईश्वर आपकी रक्षा करे। आप स्वयं अपनी रक्षा करने के लिये निर्दिष्ट उपाय अवश्य करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक सहदेव द्वारा प्रियंका प्रिंटर्स, जींद के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रैस रोहतक से छपवाकर, कार्यालय शान्तिधर्मी ७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक), जीन्द-१२६१०२ (हरि०) से प्रकाशित। सम्पादक : सहदेव

'पत्रकारिता विशेषांक' के लिए शोध आलेख आमंत्रित

'बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395:7115* Referred Journal *Impact Factor :3-811*

Approved By : NISCAIP

का आगामी अंक 'पत्रकारिता विशेषांक' होगा।

'उप विषय' :–

१ भारत में मीडिया की स्वतंत्रता
२ स्वतंत्रता आंदोलन के समय मीडिया की भूमिका
३ आपातकाल और मीडिया की स्वतंत्रता
४ मीडिया की स्वतंत्रता का मूल्यांकन
५ साहित्यिक पत्रकारिता में शांतिधर्मी का योगदान
६ मीडिया की सेवा करते हुए दिवंगत हुए पत्रकार
७ पत्रकारिता के क्षेत्र में रोजगार के अवसर
८ ऑनलाइन पत्रकारिता और तकनीकी क्रांति
९ गणेश शंकर विद्यार्थी और राष्ट्रवादी पत्रकारिता
१० महिला और मीडिया
११ आर्यसमाज और हिंदी पत्रकारिता
१२ पंडित चंद्रभानु आर्य, जींद का हिंदी पत्रकारिता को योगदान
१३ संविधान और मीडिया की स्वतंत्रता
१४ हरियाणा से प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं का पत्रकारिता को योगदान
१५ भारतीय पत्रकारिता और विश्व प्रेस आजादी इंडेक्स
१६ भारत में प्रिंट मीडिया का भविष्य
१७ डिजिटल मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्म
१८ पत्रकारिता और ऑनलाइन कक्षाएं
१९ मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती फेक न्यूज
२० सोशल मीडिया और पत्रकारिता
२१ समाज और साहित्य की पत्रकारिता
२२ पत्रकारिता के विभिन्न रूप (खोजी, खेल, बाल, महिला, कृषि, विधि, रेडियो, दूरदर्शन, फोटो, चित्रपट, ग्रामीण, पीत, राजनैतिक, आर्थिक आदि)
२३ विज्ञापन और जनसंपर्क
२४ संपादक के गुण
२५ आजादी से पहले व बाद की पत्रकारिता
२६ पर्यावरण और मीडिया
२७ पत्रकारिता इतिहास, अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं विशेषताएँ
२८ पत्रकारिता का इतिहास २९ पत्रकारिता विविध आयाम

नोट :– अन्य सम्बधित उप विषय पर भी आप अपना आलेख हिन्दी, अग्रेजी भाषा में भेज सकते हैं।

❖ शब्द संख्या १५००–२०००, हिन्दी फॉन्ट MS Word : kruti dev10, मंगल, पेजमेकर में, टाइम रोमन '३०–०६–२०२०' तक narendersoni24@gmail.com पर भेज सकते हैं।

नोट :– १ पेपर के अंत में आप अपना नाम, पता पिन कोड सहित, संस्था, मोबाइल नम्बर अवश्य दें। २– पीडीएफ, स्कैन व हाथ लिखे आलेख स्वीकार नहीं किये जायेंगे। नोट : पेपर चयनित होने पर सहयोग राशि '५०१/–' देनी होगी।

प्रधान संपादक
डॉ० विष्णु राय
ऐराकुल्म

सम्पादक
डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट
सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक
टाटिया विश्वविद्यालय
श्री गंगा नगर (राजस्थान)
मो० 8708822674

अतिथि संपादक
नरेन्द्र सोनी
शोधार्थी पीएचडी सीएमटी विभाग
गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा)
मो० 9812787018

www.bohalsm.blogspot.com

R.N.I. No. 70866/99 शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक (मई, २०२०) P.R. No. : PKL 150-A/2020-22

शांतिधर्मी एक अद्वितीय पत्र है

इसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये स्वस्थ और सुरूचिपूर्ण सामग्री होती है।

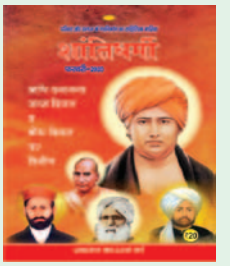

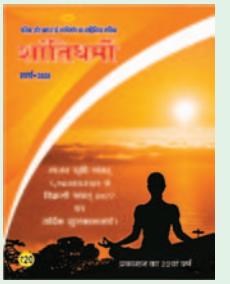

☆ **शांतिधर्मी** में धर्म-दर्शन के रहस्य, राष्ट्र व समाज की ज्वलंत समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों के श्रेष्ठ विचार होते हैं।

☆ **शांतिधर्मी** भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक दिखाता है।

☆ **शांतिधर्मी** वह मार्ग दिखाता है, जिसे पाने के लिये लोग भटक रहे हैं। परिवार में समाज में सह-अस्तित्व व अन्तरात्मा में सुख शांति का सन्देशवाहक है।

☆ **शांतिधर्मी** उस अध्यात्म का प्रचार करता है-जिसे अपनाने में देश-काल, जाति, मजहब, सम्प्रदाय की सीमाएँ आड़े नहीं आतीं। यह सच्चे ईश्वरीय ज्ञान का प्रचारक है।

☆ **शांतिधर्मी** स्वाध्याय भी है और स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी।

☆ **शांतिधर्मी** प्रत्येक श्रेष्ठ-धार्मिक-राष्ट्रप्रेमी-मानवतावादी-व्यक्ति के लिये एक विचार-सूत्र है। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवार का आभूषण है।

शांतिधर्मी पढ़िये-

अपने प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति सर्वांगीण दायित्वों को जानिये।

जीवन के जटिल व गूढ़ रहस्यों को सहज ही सुलझाईये।

मूल्य : एक प्रति : 20.00 वार्षिक : 200.00 10 वर्ष : 1500.00

शान्तिधर्मी कार्यालय
756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक)
जीन्द-126102 (हरियाणा)
फोन 9416253826, 9996338552
E-mail : shantidharmijind@gmail.com